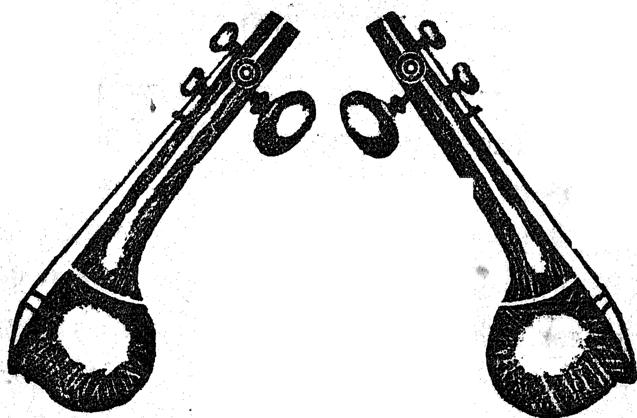
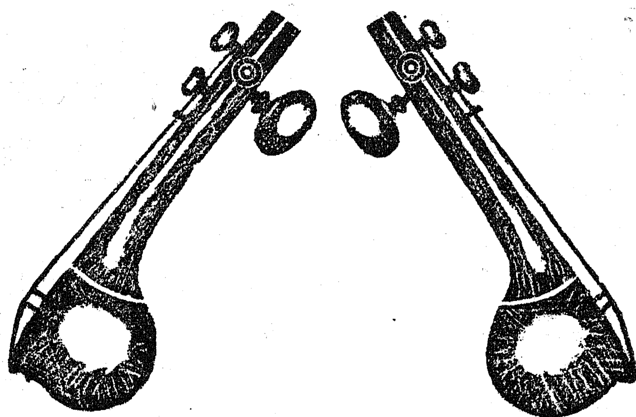


श्रीगणेशायनमः

॥ नारदीय शिक्षा भाषा टीका समेत ॥

भूमिका.

सर्व शक्तिमान् ईश्वरनें सृष्टि स्वरके बलसे ही रची है. कारण जगत्में यह बात प्रसिद्ध है कि जब परमेश्वरको संसार रचनेकी इच्छा हुई तब उसने आपने नाभिकमलसे चतुमुख ब्रह्माको उत्पन्न किया और उसे आज्ञा दी कि हे ब्रह्मन् अब तुम सृष्टि निर्माण करो, इस बातको सुनकर ब्रह्माजी बोलेकी मुझे ज्ञान नहीं है बिना ज्ञान कोई भी कुछ कर नहीं सक्ता. तब अनंत शक्तिमान् नारायणनें उसे वेद पढाया उसके द्वारा ब्रह्माजी सृष्टि रचने लगे. वेद क्षाने अर्थयुक्त शब्द समूह. शब्दका मूल स्वर है बिना स्वरके



श्रीगणेशायनमः

॥ नारदीय शिक्षा भाषा टीका समेत ॥

भूमिका.

सर्व शक्तिमान् ईश्वरनें सृष्टि स्वरके बलसे ही रची है. कारण जगत्में यह बात प्रसिद्ध है कि जब परमेश्वरको संसार रचनेकी इच्छा हुई तब उसने आपने नाभिकमलसे चतुर्मुख ब्रह्माको उत्पन्न किया और उसे आज्ञा दी कि हे ब्रह्मन् अब तुम सृष्टि निर्माण करो, इस बातको सुनकर ब्रह्माजी बोलेकी मुझे ज्ञान नहीं है बिना ज्ञान कोई भी कुछ कर नहीं सक्ता. तब अनंत शक्तिमान् नारायण-नें उसे वेद पढाया उसके द्वारा ब्रह्माजी सृष्टि रचने लगे. वेद श्याने अर्थयुक्त शद्ब समूह. शद्बका मूल स्वर है बिना स्वरके

सहायता शद्व अथवा बर्ण प्रगट होतेही नहीं. इस लिए जैसा सृष्टिका आदिकारण विश्वंभर परमात्मा है वैसा ही संपूर्ण शद्वों-का आदिकारण स्वर ही है. दुसरा आगे लिखे हुए महादेव और पार्वतीजीके संवादसे यह बात स्पष्टही होती है की स्वर ईश्वर रुप ही है. सो यह- देव्युवाच-- **कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परि-वर्त्तते कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्डनिर्णयम्** ॥ महादेव उवाच- **शृणुत्वं कथितं देवि देहस्थं ज्ञानमुत्तमम् येन विज्ञात-मात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रतीयते ॥ १ ॥ स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम् । स्वरेच सर्वं त्रैलोक्यं स्वरमात्म स्वरूपकम् ब्रह्माण्ड पिंड खण्डाद्याः स्वरेणैव हि निर्मिताः। सृष्टिसंहार-कर्त्ताच स्वरः साक्षान्महेश्वरः ॥ २ ॥ स्वरज्ञानात्परं गुह्यं स्वरज्ञानात्परं धनम् स्वरज्ञानात्परं ज्ञानं नवा दृष्टं नवाश्रुतम् ।** इनका भावार्थ यह है कि. पार्वतीजीने महादेवजीसे ब्रह्माण्डोत्पत्ति-विषयक जब प्रश्न किया तब महादेव बोले कि हे पार्वती-- अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड और शरीर पिण्डादि जितने कार्य है वे सब स्वर-से ही बनते है इसी तरह वेदशास्त्र गान्धर्व और त्रैलोक्य इत्यादि स्वरसे ही निर्मित है. अधिक क्या कहे स्वर मेरा ही स्वरुप है. स्वर ज्ञानसे परे गुह्य और धन तथा ज्ञान आजतक मैने कभी देखा न सुना और भविष्यमें इससे अधिकतर कोई न होगा इत्यादि.

वह स्वरका ठीक ठीक ज्ञान बिना शास्त्रके हो नहि सक्ता कोईभी वस्तुका निःसन्देह ज्ञान शास्त्रसे ही होता है. शिक्षाका मतलब शास्त्रही है" शिक्षयति इति शिक्षा" माने जो सिखलाती है. शास्त्रका अर्थ भी यही है.

सर्व साधारणोंको यह विदित होगा कि ब्रम्हपुत्र नारदका गमन इस स्वरके बलसे ही त्रिलोकमें होता था. ऐसा स्वरका महात्म्य है. यद्यपि बहोतसी विद्याए है तथापि वे सब एकदेशी है यह विद्या तो सर्व देशी है. क्यों की, भाषा देश भेदसे भिन्न होती है. परंतु सप्तस्वर सब देशोंमें समान रहते है. प्रायः कई एक गायनवालोंका यह कथन है कि स्वरज्ञान तो गुरु गम्य है उसके लिए शास्त्र पढने का कुछ भी उपयोग नहीं वह उनका कहना ठीक नहीं, क्यौंकी, जो लोग किसी विद्याके विद्वान् कहाते है वे विनाशास्त्रके विद्वत्ताका अनुभव कर नहीं सक्ते. इस लिए विद्यामें प्रवीणता उनको शास्त्रद्वारा ही करनी चाहीए. यद्यपि किसी किसी स्थलमें शास्त्रसे व्यवहार विरुद्ध देखा जाता है तो भी सर्वथा शास्त्र त्याज्य नहीं हो सक्ता. शास्त्र; विद्याको थोडेही परिश्रमसे हासिल कराता है. दूसरा शास्त्रके निर्माण करनेवाले मुनिगण सब त्रिकालज्ञ थे वे भूतभविष्य बर्तमान इन तीनोकालके वार्ताको यथार्थ समझतेथे तब शास्त्रकार और अर्वाचीन गायक गणोंकी तुलना कदापि होनही सक्ती. "**शास्त्राद्रूढिर्बलीयसी**" यह न्याय यद्यपि लोक व्यवहारके प्राबल्यको दृढ करताहै तथापि इस वचनसे सर्वत्र शास्त्रको दुर्बलता मानी नहीं जाती. एकदो स्थानोंमें व्यवहार बलवान् होताहै. यदि सर्वत्र मानाजाय तो शास्त्रको वैय्यर्थहि हो जायगा. आधुनिक गायक जनतो उच्छृंखलके सामान शास्त्रका अनादरही करते है. जब कही २ शास्त्र विरुद्ध व्यवहार दृष्ट होय वहांपर व्यवहारको अन्धपरंपरा समझ कर ~~शास्त्रका आदर~~ करना सर्वथा उचित होगा.

भागवत प्रथम स्कन्धके षष्ठ अध्यायमें जो व्यासमुनि और नारदका संवाद है उस्से "स रि ग म प ध नि" ये स्वरको अनादित्व स्पष्ट ही होता है. और उस्के ३३ वे श्लोकमें श्रीभगवान् महाविष्णुनें मुझको यह वीणा दिया और स्वर ब्रह्मका उपदेश किया, उन स्वरोको मै गाता हुआ और इस "देवदत" नामके वीणाको बजाता हुआ ईश्वरका प्राणरूप होनेसे त्रिलोकमें भ्रमण करता हुं यह लिखा है सो श्लोक यह है. ॥**देवदत्तामिमां वीणां स्वर ब्रह्म विभूषिताम् मूर्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम्** ॥

शास्त्रकार जो बाते आपने निर्मित किए हुए श्लोक या सूत्रमें लिखते है वे सब यतार्थही मानना चाहिए उस्में अन्यके प्रामाण्य की कुछभी अपेक्षा करनी नहि चाहिए. अब यह ग्रन्थ नारदीय शिक्षा है इस लिए इसमें कहे हुए वचनमें प्रमाण वे ही हैं. इस्से अधिक प्रमाण की अपेक्षा न करनी यह पाठक गणोंको निवेदन करते है.

यद्यपि हमको प्रथम " संगित् रत्नाकरादि " ग्रन्थका भाषान्तर करना उचित था क्योंकि उसमें राग ताल नृत्यादिकोंका स्पष्ट व्याख्यान दिखाया है, और लोगोंको भी इसी की अपेक्षा बहोत रहती है तथापि इस शिक्षामें संज्ञा स्वरुपका वर्णन होनेसे बिना संज्ञा संज्ञिका ज्ञान होना अशक्य समझ हम शिक्षाके भाषान्तरके कार्यमें प्रथम प्रवृत्त हुए इससे इसका पाठकगणोंने अनादर करना न चाहिए " नारदीय शिक्षा " यह गायन शास्त्रका आदिम ग्रन्थ है. और इसमें षट्जादि स्वरोंके लक्षण तथा गायकों-

के गुणोंका और दोषोंका वर्णन किया है. इस लिये इस ग्रन्थके पढनेंसे गानेवालोंको आपनेमें रहनेवाले गुणोंका और दोषोंका ज्ञान स्पष्ट होकर वे उन दोषोंसे मुक्त होनेका यत्न करेंगे, और वे लोकोपवादसे निवृत्त होते हुए सन्मानको प्राप्त होंगे. इससे इस शिक्षाका उपयोग गायकगणोंको अत्यन्त होगा.

प्रार्थना है की— उपर लिखी हुई बातको पढकर, हमारे पाठक वर्ग, जो की गायन विद्याको नहीं जानते किंतु केवल श्रवण की अपेक्षा रखते है, वे इस शिक्षाको निरुपयुक्त न समझे. कारण यह लोगोंका कथन है कि गायनके गुण और दोष, और वह गायन अच्छा या बुरा इत्यादि जाननेकी शक्ति गाने वालों-को ही होती है, और गायन न करनेवालोंको अच्छा बुरा कहने-का अधिकार तक नही है. इत्यादि त्रुटीको हमारे यह शिक्षाका अध्ययन (पठन) मिटाता है क्यौंकी शिक्षा पढनेसे पाठक वर्गको गायनोंके गुणोंका और दोषोंका पूर्ण ज्ञान होता है. जब की उन्होको गायन गुण दोष ज्ञात हो जायेंगे तब गायकके गुण दोष सहजमें ही उन्होके ध्यानमें आकर अच्छे बुरेकी चुनाव करने की शक्ती उत्पन्न होगी. उससे " सब धान बावीस पसेरीं ,, इत्यादि कहावटके दोषसे वे मुक्त होकर गुणीजनों-का हीं आदर करनेंमें उन्होंकी प्रवृत्ति होगी. और इस प्रवृतीके कारण संगीत विद्याकोभी उत्तेजन साहजिक होकर हमारी प्राचीन संगीतशास्त्रीय विद्या जो आजकल लुप्तप्राय होरहीहै उस्को प्रगट करनेका महत्श्रेय उन्होंको प्राप्त होगा.

अब हमारे सर्व सज्जन पाठकगणोंसे सविनय यह निवेदन है कि वे राजहंस पक्षीके समान दोषोंको ग्रहण न करते हुए गुणोंको ही ग्रहण करे और आपने २ व्यवहारकालमेंसे कुछकाल इस प्राचीन ग्रन्थके भाषान्तरके पठनमें खर्चकर कर्ताके उत्साहको बढावे.

गायन विद्याका महत्व कितना है और उस विद्याको पढनेका अधिकार कौन २ जातीके मनुष्योंको होना चाहिये इत्यादि विचार भी आजकलके लोगों को विदित नहीं है ऐसा हमारा ख्याल है कारण च्यार वेद च्यार उपवेद छ शास्त्र और अठरहा पुराण, इन सब विद्याओंका प्रचार शास्त्रके मर्यादासे और गुरुपरम्परासे चला आता है. और गायनका शास्त्रीय पठन किसी देशमें कुछ भी मालुम नहीं होता संपूर्ण शास्त्रोंके और वेदादि विद्याओंके बडे २ पाठालय कालिज वगैरह नियुक्त है और उन्होको देश २ के राजाओंकी सहायता भी देखने मे आती है, और इस संगीत विद्याका पाठालय तथा संगीत शास्त्रीय विद्याका पठन पाठन देशसे तो क्या परन्तु जगत्से ही उठा है ऐसा मालूम होता है. साधारण रीतीसे देखो तो इस विद्यामें बडा भारी यह गुण है कि आबालवृद्ध जन इसके सुनने की अपेक्षा करते है. नादसे सर्प व्याघ्रादि दुष्ट प्राणि भी मोहित होकर आपनी दुष्टताको छोड देते है. जनावर तक मोहमें फसते है फिर मनुष्योंकी क्या कथा.—इस विद्यामें जो गुण हें उसके उपर एक प्राचीन कवीका श्लोक भी है. सो यह– " सद्यः फलति गांधारी मासमेकं पुराणिकः। कालेन फलति छन्दो ज्योतिर्वैद्य

निरन्तरतम् ॥–श्रीमहादेवजी रात्रान्दिन गायनमें और नृत्यमें लुब्ध होकर इसीके आधार से जगत्का संहार करते है सामवेद-के गायनसे रावणनें ईश्वरको प्रसन्न किया था . ऐसी कथा है. सम्पूर्ण विद्याओंका आदिम पीठ शारदा सो भी वीणा हस्तमें धारण कर सदैव गायन करती है इत्यादि बहोत से श्रेष्ठ २ गुण इस संगीत विद्यामें है.

अब हमको अधिकारी कहनेका यह प्रसंग आया कि " प्रयो-जनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्त्तते " ऐसा न्याय है इसका अर्थ यह है कि मनुष्य मात्र की किसी कार्यमें प्रवृति विना प्रयोजन नहो होती. इसके अनुसार यह विद्या बिना प्रयोजन हम लोगोने क्यौं कर पढनी चाहीये, ऐसा मनमें धारण कर उन्होंका उत्साह भंग हुआ है.

दुसरा-- आजकल लोगोंको यह ख्याल है की यह संगीत विद्याके जाननें वाले प्रायः कत्थक वेश्या इत्यादि होते है इस लिए इस संगीत विद्याका अधिकार नीच कुलोत्पन्न जनोंको ही है. और उत्तम कुलकें जनोंको तो केवल श्रवणमात्रका अधिकार है. यह उन्होंकी बडी गलती समझनी चाहिये. कारण गांधर्व विद्या यह एक उपवेद है; और इसका पठन पाठनादि अधिकार द्विज-को है. द्विज यानें ब्रह्म क्षत्रिय वैश्य " त्रयो वर्णा द्विजातयः " गांधर्व विद्या यह वेद है वेदके पढनेका अधिकार द्विजातीको है यह बात आपामर प्रसिद्ध है. इसमे प्रमाण नीचे लिखते है. यह

महा भागवतमें तृतीय स्कन्ध अध्याय द्वादश (१२) ३६ ३७--३८ श्लोकके विदुर मैत्रेयके संवादसे स्पष्ट होता है. विदुर उवाच " **सवै विश्वसृजामीशो वेदादीन् मुखतोऽसृजत् ।।यद्य धेनासृजदेव तन्मे ब्रूहि तपोधन ।। ३६ ।। मैत्रेयउवाच । ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः । शास्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमंप्रायश्चितं व्यधात्क्रमात् । ३७ आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः । स्थापत्यंचासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादि भिर्मुखैः । ३८** भावार्थ- सृष्ठी निर्माण कर्ता ब्रह्माजीने क्या क्या रचा इत्यादि प्रश्न विदुरने मैत्रेयसे पूछा मैत्रेय बोले की- ब्रह्माको चार मुख, वे पूर्व दाक्षिण, पश्चिम और उत्तर इस क्रमसे हैं उन्होसे ऋग्यजुः सामाथर्व ऐसे ४ वेद निकले और उन च्यारो वेदोंसे च्यार उपवेद निकले सो इस क्रमसे १ आयुर्वेद, २ धनुर्वेद, ३ गांधर्व वेद और चतुर्थ ४ स्थापत्य, वैद्य, अस्त्र, गायन, कलाशास्त्र, ग्रहबंधन, इत्यादि.

भवदीय

पंडित दत्तात्रेय शास्त्री

व्याकरणोपाध्याय महाराष्ट्रदेश निवासी

सम्पादक—संगीतामृत प्रवाहके.



श्रीगुरुभ्योनमः

॥ नारदीय शिक्षा भाषा टीका समेत ॥



तस्य गीतस्य माहात्म्यं के प्रशंसितुमीशते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेवैकसाधनम् ॥

मूलम्.

अथातः स्वरशास्त्राणां सर्वेषां वेद निश्चयम् ।
उच्चनीच विशेषाद्धि स्वरान्यत्वं प्रवर्तते । १

अर्थ

जेहीके सुमिरन ध्यानतें बनत सकल शुभकाज।
सो गणेश वाणी सहित बुद्धि दीजिए आज।

अथ याने सामवेदके पठन कालमें उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरोंका यथार्थ ज्ञान हमने कहा हुआ शिघ्रतासे जानो ऐसे श्री नारदमुनि आपने शिष्यवर्गसे कहते है. यद्यपि स्वरोंका मूल ॐकार एक हि है तथापि वह उर्ध्व, मध्य, अधःस्थानके उपाधियोंसे उदात्तादि अनेक भेदोंको प्राप्त होता है. इस कारण अनेक स्वर कहाते है. और इन तीन स्वरोंसे ही षड्जादि भेद सिद्ध होते है. जैसे–

" उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ ।
स्वरितप्रभवाह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ।"

इस्का अर्थ–जो स्वर ऊर्ध्व स्थानमें उत्पन्न होता है वह उदात्त कहाता है और वह निषाद और गान्धार इन दो स्वरोंसे युक्त है, अधःस्थानमें जो उत्पन्न है, उसे अनुदात्त कहते है और वह ऋषभ और धैवत इन दो स्वरोंसे युक्त है. इसी रीतीसे जो मध्य स्थानसे उत्पन्न है वह स्वरित कहाता है और वह षड्ज मध्यम और पञ्चम इन तीन स्वरोंसे युक्त है. । १

आर्चिकं गाथिकं चैव सामिकंच स्वरांतरम् ।
कृतान्ते स्वरशास्त्राणां मयोक्तव्यं विशेषतः । २

ऋग्वेदमें यजुर्वेदमें और सामवेदमें भिन्न भिन्न स्वर होते है. उन्होका ज्ञान, ऋग्यजुःसामगत जो कण्ठ हस्त अंगुल्यादिकोंसे प्रदर्शित मार्ग उससे होता है. इस भिन्नताको वैदिक लोक स्पष्ट दिखलाते है. । २

एकान्तरःस्वरो ह्यृक्षु गाथासु द्व्यन्तरःस्वरः ।
सामसु त्र्यन्तरं विद्यादेतावत्स्वरतोन्तरम् । ३

एक स्वरसे व्यवहित ऋग्वेद और स्वरद्वयसे व्यवहित यजुर्वेद और त्र्यन्तर याने तीन स्वरोंसे व्यवहित सामवेद होता है. ये ऋग्वेदादिकों के लक्षण है. उपर कहे हुए लक्षणोंसे विरहीत मंत्रका उच्चारण करनेवाला प्रायश्चित्ती होता है. इसमें यह नीचे लिखी हुई श्रुति प्रमाण है. । ३

" यज्ञे कर्माणि नानृतं वदेदिति श्रुतिः । "

श्रुतिका अर्थ यह है-जिस स्वरमें जो मन्त्रोच्चार कहा है उसे यदि अन्य स्वरमें किया जाय तो बोलनेवाला अनृतवादी कहाता है और वह प्रत्यवाय याने प्रायश्चित्तका भागी होता है. । ३

ऋक्सामयजुरङ्गानि ये यज्ञेषु प्रयुञ्जते ।
अविज्ञानाद्धि शास्त्राणां तेषां भवति विस्वरः । ४

ऋग्वेदादिकोंके अङ्ग याने अवयव जो स्वर हैं. तथा यज्ञके मन्त्रमें जिन स्वरोंका उआरण याज्ञिक लोक करते है, वे स्वर शास्त्रके ज्ञानसेही ठीक ठीक बोले जाते हैं. जिन्को इस शास्त्रका

परिज्ञान नही है; ऐसे लोग इन स्वरोंका यथार्थ उच्चारण कर नही सकते. जिस स्वरका उच्चारण यथार्थ नही हुआ वह विस्वर कहाता है. । ४

मन्त्रोहीनःस्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
सवाग्वज्रो यजमानं हिनास्ति यथेन्द्र शत्रुः स्वरतो पराधात् । ५

स्वरोंसे और वर्णोसे विरहित जो मन्त्र, और मिथ्या प्रयुक्त याने यथोचित स्थलमें न पढाहुआ निष्फल होता है. और वाणीरूप बज्र होकर यजमानकी हानि करता है. जैसे "स्वाहेन्द्र शत्रुर्वर्धस्व,, यह मन्त्र प्रयोक्ताकेहि नाशमें कारण हुआ. इहांपर ऐसी कथा है कि, पूर्व कालमें वृत्रासुर नामक एक दैत्यने इन्द्रपदकी इच्छासे यज्ञ प्रारम्भ किया था, और उस यज्ञमें वह "स्वाहेंद्रशत्रुर्वर्धस्व" इस मन्त्रसे होम करता था. मन्त्रमें जो इन्द्रशत्रु पद है वह समस्त (मिला हुआ) है. उस पदके स्वर वशसे दो अर्थ होते है. शत्रु शद्बका अर्थ शासन कर्ता ऐसा होता है. कारण शत्रु शद्बमें "शद" यह धातु है और उससे कर्तृवाचक "उ" प्रत्यय और धातुको रेफका आगम हुआ है धातुका अर्थ प्रकरणसे यहां पर शासन करना यह है. इन्द्रशत्रु शद्बमें षष्ठीतत्पुरुष और बहुव्रीहि ऐसे दो समास होते है. षष्ठीतत्पुरुषमें "इन्द्रस्य शत्रु" और बहुव्रीहि समासमें "इन्द्रःशत्रुर्यस्य" ऐसा इन्द्रशत्रु पदका विग्रह होता है. प्रथम विग्रहका अर्थ इन्द्रका शत्रु याने शासन कर्ता यह है, द्वितीय विग्रहका अर्थ इन्द्र ही है शत्रु याने शासन कर्त्ता जिस्का यह है. अब प्रथम अर्थसे शासन कर्त्तत्व वृत्रा-

सुरको आता है और द्वितीय अर्थसे इंद्रको आता है. यज्ञमें होम के समय उसने इंद्रपदके इकार का उच्चारण अनुदात्त स्वरसे किया "बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्" इस सूत्रसे बहुव्रीही समासमें पूर्वपद प्रकृति स्वर होता है और तत्पुरुषमें अन्त उदात्त होता है, याने शत्रु शब्दका उकार उदात्त रहता है. अब बहुव्रीहि समासमें स्वरके बदलनेसे शासन कर्तृत्व इन्द्रको हुआ उस्से यज्ञ कर्ताकाही नाश हुआ.

जिस पुरुषको शास्त्रका यथार्थ ज्ञान नहीं है, वह मंत्रोंके वर्णोंका और स्वरोंका यथार्थ उच्चारण कर नही सक्ता इस्से वह मंत्र उसके नाशमें कारण होता है. इस लिये शास्त्रका ज्ञान अत्यावश्यक है. । ५

प्रहीणः स्वरवर्णाभ्यां यो वैमन्त्रः प्रयुज्यते ।
यज्ञेषु यजमानस्य रुषत्यायुः प्रजां पशून् । ६

पूर्व श्लोकमें विस्वरका उच्चारण करने वालोंका नाश प्रदर्सित किया अब इस श्लोकमें दक्षिणा दानसे नियुक्त पुरोहितने अयथार्थ स्वरवर्णसे किया हुआ मंत्र का प्रयोग भी यजमानके आयुष्य पुत्रादि और पशु आदियोंके विघातमें कारण होता है इत्यादि भावार्थ है. इससे यह स्पष्ट होता है कि मंत्रके प्रयोग करनेवालें को भी शास्त्रके ज्ञान की आवश्यकता है. इस लिये यज्ञकार्यमें नियुक्त ऋत्विजादिक भी योग्य होने चाहिए. । ६

उरःकण्ठः शिरश्चैव स्थानानि त्रीणि वाङ्मये ।
सवनान्याहुरेतानि साम्नाप्यर्धतोऽन्तरम् । ७

एक स्वरके उच्च, नीच, और मध्यस्थलके उपाधिसे तीन भेद कहे और उन तीन भेदोंसे षड्जादि सप्तस्वरोंकी उत्पत्ती भी कही अब उनके स्थान और कालका वर्णन करते है.

वाणी ४ प्रकारकी होती है. जैसे—परा, पश्यन्ती, मध्यमा, और वैखरी. उन्में परावाणी विन्दुरुप है. जिस्का स्थान नाभिकमल है. और वह युक्त योगी गम्य है युक्त याने जिनको जगत्के विषयोंका भान सर्वदैव हुआ करता है. दूसरी पश्यन्ती उस्को युञ्जान जानते है युञ्जान याने जिन्को विचार करनेपर ज्ञान होता है. जिस्का स्थान नाभिसे हृदय देशतक जो भाग यह है. और यह क्रियारूप है, तीसरी मध्यमा, वह अर्थरूप है. याने मनुष्यमात्र, बोलनेके पूर्वकालमें हृदय देशमें अर्थयुक्त शब्दोंका विचार करता है. उन शब्दोंमें वर्ण नही रहते क्यौं कि वर्णका उच्चारण कण्ठादिस्थानोंसे प्रारम्भ होताहै. चतुर्थ वाणी वैखरी, वह वर्णयुक्त होती है औरउससे आपने अन्तःकरणका भावार्थ प्रगट किया जाता है. वैखरी वाणीके उर, कण्ठ और शिर ऐसे तीन उच्चारण स्थान है और प्रातः मध्यान्ह और सायान्ह ऐसें तीन: काल है उनको याज्ञिक लोग सवन कहते है. इन तीन स्थानोसे मन्द्र मध्य और तार ये स्वर क्रमसे उत्पन्न होते है. अर्थात् प्रातःकालके समय मन्द्र स्वरका साधन गायनादि प्रशस्त होता हैं. इसी रीतीसे मध्यान्हके समय मध्य और संध्याकालके समय तारस्वरोंका गायनादि प्रशस्त माना जाता है. । ७

उरःसप्त विचारः स्यात् तथा कण्ठस्तथा शिरः।
नच सप्तोरसिव्यक्ता स्तथा प्रावचनो विधिः। ८

इसका भावार्थ उरः याने हृदयदेशमें सा, री ग इत्यादि सप्त प्रकारके स्वर कहे जाते है उसको आधुनिक जन 'खरज' कहते है. इसी तरह कण्ठ देशमें सात स्वरोंका उच्चारण होता है और तार स्वर शिरः याने शिरोभागमें, जिसको मस्तक कहते हैं, उसमें बोला जाता है परन्तु हृदय देशमें उच्चरित शब्द अव्यक्त होते है. अव्यक्त याने जिनोका उच्चारण तथा श्रवण स्पष्ट हो नही सक्ता. ऐसा 'प्रावचनविधि' याने अध्ययनके समयकी लोक रूढि है. । ८

कठकालापवृत्तेषु तैत्तिरीयाऽऽह्वरेषुच ॥
ऋग्वेदे सामवेदेच वक्तव्यः प्रथमः स्वरः। ९

कठादि शाखाओंमें, ऋग्वेदमें और सामवेदमें प्रथम (षड्ज) स्वरसे गान विहित है. ऐसा कोई ऋषियोंका अभिप्राय है. । ९

ऋग्वेदस्तु द्वितीयेन तृतीयेनच वर्त्तते ।
उच्च मध्यम संघातः स्वरोभवति पार्थिवः। १०

कोई कोई मुनिगणोंका यह मत है कि, ऋग्वेद द्वितीय और तृतीय याने ऋषभ और गन्धार इन दो स्वरसे युक्त रहता है. । १०

तृतीय प्रथमः क्रुष्टान् कुर्वन्त्याऽऽह्वरकाः स्वरान् ॥
द्वितीयाद्यास्तु मन्द्रांस्तां स्तैत्तिरीयाश्चतुरः स्वरान्। ११

आऽऽह्वर शाखा को पठन करने वाले जन तीसरे स्वर को और पहिले स्वर को उच्च आवाजमें कहते है. और वाजसनेयी शाखा

को पठन करनेवाले लोग द्वितीयादि स्वर मन्द्र कहते हैं, तथा तैत्तिरीय शाखावाले लोग चार स्वरोंमें गाया करते हैं. । ११

प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोथ चतुर्थकः ।
मन्द्रः क्रुष्टो ह्यतिस्वार एतान् कुर्वन्ति सामगाः । १२

सामवेदको गायन करने वाले जन प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ये स्वर मन्द्र और उच्च पठन करते है. । १२

द्वितीयः प्रथमावेतौ ताण्डिभाल्लविनां स्वरौ ।
तथा शातपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम् । १३

ताण्डिमतानुयायी और भाल्लवमतानुयायी लोग प्रथम और द्वितीय स्वरका उच्चारण करते है. इनी स्वरोंमें वाजसनेय शाखा वाले शतपथ नामक स्वशाखीय ब्राह्मण भागको गाते है. । १३

एते विशेषतः प्रोक्ताः स्वरा वैसार्वत्रैदिकाः ।
इत्येतच्चरितं सर्वं स्वराणां सार्वत्रैदिकमितिः । १४

उपर के श्लोकोंमें कथन किये हुए षड्जादि स्वर ऋग्वेदादि वेदोंमें याज्ञिक लोग गाया करते है इसी कारणसे वे सम्पूर्ण स्वर "सार्ववैदिक" कहाते है. । १४

इससे यह बात स्पष्ट होती है कि वैदिक लोगोको भी स्वर ज्ञान अत्यावश्यक है. और वह ज्ञान बिना गुरुके मिल नही सक्ता इस लिये वैदिक लोगोने भी गायन शास्त्राभिज्ञ गुरु करना चाहिए. यद्यपि गाने वाले लोग वेद पाठन कराने में अशक्त हैं तो भी वे सारिगम, इत्यादि सप्त स्वरोंका बोध करानेमें समर्थ

होते है. यद्यपि वैदिक लोग वेदको गाते समय तानपूरा इत्यादि वाद्योंकी सहायता लेना अनुचित समझते हैं तथापि वह उन्होंका समझना बिलकुल गलतीका है, क्योंकी विना आधार मनुष्यमात्र कोईभी काम ठीक ठीक कर नहि सक्ता. इस लिए गायन विद्यामें जो लोग निपुण है वे भी वीणा इत्यादि वाद्योंकी अपेक्षा रखते है.

किसी वाद्यके अचल स्वरके आधार बिना, सुस्वर सामवेदादिकोंका गायन अशक्य समझकर श्रीनारद देवर्षिने वीणाको धारण किया. जब ऐसे त्रिकालज्ञ और अप्रतीम शक्तिमान् महात्माने वेदगायन करते समय अपस्वरके भीतीसे वाद्य स्वीकार किया तब आधुनिक निःशक्त और अल्पज्ञ मनुष्योंकी क्या कथा. विस्वर वेदका गायन, गानकरनेवालोंको नष्ट करता हुआ, यजमानको भी नष्ट कर देता है. इसमें प्रमाणीभूत पाणिनीयशिक्षा मथित वाक्य नीचे लिखतें है.

"अक्षता शस्त्र रूपेण वज्रं पतति मस्तके"

विस्वर वेदका मन्त्र पढकर यजमानको आशिर्वादरूप जो अक्षता दी जाती हैं वे अक्षता (चावलके दाने) वज्र होते हुए यजमानके नाशमें कारण होते है. ॥ १४

॥ इति प्रथम कण्डिका ॥

। अथ द्वितीय कण्डिका ।

सामवेदेतु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा ॥
अल्प ग्रन्थप्रभूतार्थं श्राव्यं वेदाङ्गमुत्तमम् ॥ १

अब यहांसे आगे सामवेद गायन करनेके लिए उपयुक्त जो स्वरोंके भेद, ताना, ग्राम, इत्यादि उन्हीं को श्रीनारद मुनि आपने मतसे व्याख्यान करेंगे सो श्रवण करो. स्वरोंका निःसन्देह ज्ञान होनेके लिए षडङ्ग वेदका अध्ययन अत्यावश्यक है. उन ६ अङ्गोंका व्याख्यान पाणिनि ऋषि प्रणीत शिक्षामें प्रदर्शित किया है. सो यह " छन्दःपादौतु वेदस्य हस्तौ कल्पोथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते। शिक्षाघ्राणंतुवेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात्साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते ॥ इसका भावार्थ--वेदोके पाद, छन्द हैं, कल्प, दोहस्त है, ज्योतिषशास्त्र, वेदका अयन याने नेत्र है, निरुक्त, श्रोत्रस्थानीय है शिक्षा जो है सो वेदका घ्राणेन्द्रिय ह. और मुख व्याकरण है. इससे यह स्पष्टही होता है कि यथोचित स्वरोंमें सामवेदके गानेवालों को षडङ्ग छन्दादिकों का अध्ययन जरुर है.

तान राग स्वरग्राम मूर्छनानां तु लक्षणम् ॥
पवित्रंपावनंपुण्यं नारदेन प्रकीर्तितम् ॥ २

अब इहांसे नारद मुनि आपने शिष्यवर्गको स्वमतसे तान, स्वर, ग्राम, और मुर्छना का लक्षण कहते है. ॥ २ ॥

॥ शिक्षामाहुर्द्विजातीनामृग्यजुः सामलक्षणम् ॥
॥ नारदीयमशेषेण निरुक्तमनुपूर्वशः ॥ ३ ॥

इस श्लोकमें इस बातका निर्णय किया है कि, शिक्षाका कथन द्विजातेके लिए है. द्विजाति याने ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य. उस शिक्षामें ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेदके सम्पूर्ण लक्षण नारदमुनिके मतानुसार क्रमसे वर्णन किए हैं ॥ ३ ॥

अब स्वर मण्डलका लक्षण निम्न श्लोकमें कहते है.

॥ सप्त स्वरास्त्रयोगामा मूर्च्छनास्त्वेक विंशतिः ॥
॥ ताना एकोन पंचाशदित्येतत्स्वरमण्डलम् ॥ ४

सात स्वर स, रि, ग, म, प, ध, नि, षड्ज, मध्यम् और गान्धार ये तीन ग्राम है. मूर्च्छनाओंका वर्णन आगे लिखेंगे वे २१ हैं और ४९ ताना है इन सम्पूर्ण वस्तुओंके समूहको "स्वरमण्डल" ऐसी संज्ञा है. ॥ ४ ॥

षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा
पञ्चमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः ॥ ५

षड्ज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सात स्वर हें ॥ ५

षड्जमध्यमगान्धारा स्त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः
भूर्लोकाज्जायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः ॥ ६

षड्ज, मध्यम और गान्धार ऐसे तीन ग्राम है. ग्राम याने

स्वरसमूह- उनमें प्रथम भूलोंकसे उत्पन्न हुआ और भुवलोंकसे द्वितीय ग्रामकी उत्पत्ति कही है.

स्वर्गान्नान्यत्र गांधारो नारदस्य मतं यथा
स्वरराग विशेषेण ग्रामरागा इति स्मृताः ॥ ७

गान्धार ग्राम स्वर्ग से अन्य स्थल में नही है ऐसा नारद मुनि का मत है. ॥ ७ ॥

विंशतिर्मध्यमग्रामे षड्जग्रामे चतुर्दश ॥
तानान् पंचदशेच्छन्ति गान्धारग्राममाश्रितान् ॥ ८ ॥

मध्यम ग्राममें २० ताने हैं. षड्ज ग्राममें चौदह तानें हैं, और गान्धार ग्राम के पंधरा तानें हैं. इन तीनो ग्रामकी कुलताने ४९ हैं. ॥ ८ ॥

नन्दी विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती सुखा ।
बला या चाथविज्ञेया देवानां सप्तमूर्छनाः ॥ ९

नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा, और बला ये सात मूर्छनाए देवताओंकी जानना ॥ ९.

आप्यायनी विश्वभृता चन्द्रा हेमा कपर्दिनी ।
मैत्री बार्हतीचैव पितॄणांसप्तमूर्छना ॥ १०

आप्यायनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री और बार्हती, ये सात मूर्छनाए पित्रगणोंकी जानना ॥ १०

षड्जे तूत्तर मन्द्रास्यात् ऋषभेचाभिरुद्गता ।
अश्वक्रांतातुगांधारे तृतीया मूर्छना स्मृता ॥ ११
मध्यमे खलु सौवीरा हृष्यका पंचमे स्वरे ।

धैवते चापि विज्ञेया मूर्छना तूत्तरायता ॥ १२

निषादाद्रजनीं विद्यादृषीणां सप्त मूर्छनाः।

उपजीवन्ति गन्धर्वा देवानां सप्त मूर्छनाः ॥ १३

षड्ज स्वरमें "उत्तर मन्द्रा" इसी रीतीसे ऋषभ स्वरमें ,,अभिरुद्गता" तृतीय "आश्वक्रान्ता" नामकी मूर्च्छना गन्धार स्वरमें मध्यम स्वरमें "सौविरा" पञ्चम स्वरमें "हृष्यका" धैवतमें "उत्तरायता" और निषादमें "रजनी,, नामकी सप्तम मूर्छना है. ये सात मूर्छनाए ऋषिओकी हें. मूर्छना शद्वार्थ यह है कि मूर्च्छना शद्ब ,,मूर्च्छा" धातुसे बनाहुआ है. उस धातुका अर्थ मोह और समुच्छय है. स्वरोंमें मोह यह है कि उन्होका श्रवण यथोचित न होना. और समुच्छाय शद्बका अर्थ उपर जाना (आरोहण करना) वस्तुतस्तु मूर्च्छना शद्बका व्याख्यान आरोह और अवरोह ऐसे दो प्रकारसे होता हें. देवताओंकी जो सात मूर्च्छना दिखलाई उसे गन्धर्व लोग गाया करते हें. ।११। ।१२।१३।

पितॄणां मूर्छनाः सप्त तथा यक्षा न संशयः।

ऋषीणां मूर्छनाः सप्त यास्त्विमा लौकिकाः स्मृताः ॥ १४

पितृलोगनकी जो उपर कही हुई सात मूर्छनाए हें उसे यक्ष लोग गाया करते हें. और ऋषिगणोंकी मूर्च्छनाए मनुष्य गाते हें

वे सात मूर्छनाए ऋषियनकी हैं उसे मनुष्यलोग गाया करते हैं. ॥ १४

षड्जः प्रीणाति वै देवान् ऋषीन् प्रीणाति चर्षभः ।
पितॄन् प्रीणाति गान्धारो गन्धर्वान् मध्यमः स्वरः ॥ १५
देवान् पितॄनृषींश्चैव स्वरःप्रीणाति पंचमः ।
यक्षान् निषादः प्रीणाति भूतग्रामं च धैवत इति ॥ १६

षड्जस्वरसे देवता तृप्त होते हैं. तथा ऋषभसे ऋषी लोग गंधारसे पितृगण, मध्यमसे गन्धर्वलोग, पंचमसे देवता पितृगण तथा ऋषिलोग संतुष्ट होते हैं.

निषाद यक्ष गणोंको और मनुष्यादि प्राणियोंको धैवत तृप्त करता है. याने ये स्वर इनको अत्यन्त प्रिय हैं. इति प्रथमे द्वितीय कण्डिका । १५ १६ ।

गान चाहे लौकिक हो या वैदिक हो उसमें दश प्रकार के गुण हैं, ऐसा जानो वे प्रकार नीचे प्रगट करते हैं.

गायनस्य तु दशविधा गुणवृत्तिः तद्यथा रक्तं पूर्णमलंकृतं प्रसन्नं व्यक्तं विकुष्टं श्लक्ष्णं समं सुकुमारं मधुरमिति गुणाः

तत्र रक्तं नाम वेणु वीणा स्वराणामेकीभावे रक्तमित्युच्यते ॥ १

काष्टादिकोंसे निर्मित वीणा (तानपूरा) इत्यादिकोंके स्वरोंका गायन करनेवालोंके स्वरोंसे जो मिलाप, सो रक्त कहाता है.

पूर्णं नाम स्वरश्रुतिपूरणाच्छन्दः पादाक्षरसंयुक्तात् पूर्णमित्युच्यते ॥ २

पूर्णम् इसका यह मतलब है कि गानेवालोंने गाते समय स्वर और उनकी श्रुतियां, छंद, और पादाक्षरोंका ठीक ठीक उच्चारण करना। स्वर श्रुतियोंका उच्चारण गानशास्त्राभिज्ञ लोक जिस रीतीसे पूरा करते हैं वैसा ही करना याने संपूर्ण स्वर और अक्षर स्पष्ट बोलना. ॥ २ ॥

अलंकृतं नाम उरसि शिरसि कण्ठयुक्तमित्यलंकृतम् । ३

इसका भावार्थ यह है--पूर्व लिखे हुए तार, मध्य, मन्द्र इन भेदोंको उच्च मध्य और नीच स्वरोंमें कहना. वे ऐसे कहना कि जिस्से श्रोताके मनमें अधिक श्रवणका उत्साह बढे.

प्रसन्नं नामअपगतगद्गदनिर्विशंकं प्रसन्नमित्युच्यते । ४

स्वरके उच्चारणके समय कण्ठमें पीडा न होनी चाहिए कारण यदि उस समय किसी तरहका कण्ठमें परिश्रम होगा तो बिमारी उत्पन्न होनेका सम्भव रहता है. और 'निर्विशंक, याने स्वरके उच्चारणके समय मन शांत होना चाहिये. यदि किसी रीतिकी शंका (भीति) मनमें आवेगी तो स्वर आपनी सुस्वरताको छोड देगा.

व्यक्तं नाम पदपदार्थप्रकृतिविकारागमलोपकृत्तद्धित समासधातुनिपातोपसर्गस्वरलिंगवृत्तिवार्त्तिकाविभक्त्यर्थव - चनानां सम्यगुपपादने व्यक्तमित्युच्यते ॥ ५

व्यक्त याने गायनमें जो कोई चीज या श्लोक या वेदक मंत्र होगा उस्के पदोंका ऐसा उच्चारण होना चाहिए किं सुननेवालोंके श्रवणके साथही निःशंक अर्थ ध्यानमें आवे. प्रकृतिविकार याने श्लोकादिकमें जो पद है वे जिस धातुसे अथवा प्रातिपदिकसे सिद्ध हुए हें उसे प्रकृति कहते है उसमें विकार याने वर्णोंके फेरफार. जैसे विकृत शद्बका वैकृत यह रूप। आगम याने प्रकृतीमें वर्णाधिक्य होना. जैसा सिच् सिञ्च। लोप याने वर्णोका घटना, पृषत् उदर शद्बका तकारका लोप होकर पृषोदर यह रूप,

कृत्---भू धातुसे ' ऋदोरप्, इस सूत्रसे अप् प्रत्ययसे भवः , रूपकी सिद्धिः। तद्धित--उपगु शद्बका औपगव यह रूप. इसमें ' तस्यापत्यम्, इस सूत्रसे अणू प्रत्यय ताद्धित हुआ.

समास---राज्ञः पुरुषः इन पृथक् पदोंका राजपुरुषः यह रूप.

धातु भवति रूपमें ' भू ' धातु सत्ता अर्थ में विद्यमान रहती है.

निपात---चवा अह एव एवम् इत्यादि,

उपसर्ग---प्र, परा, अप, सम, इत्यादिक स्वर---उदात्तादि लिंग---पूलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और नपुसक इत्यादि.

वृत्ति---सामान्य रीतीसे अर्थको जानना. जैसे राम शद्बकी दशरथापत्यमें शक्ति, वह वृत्ति तीन प्रकारकी होती है. शक्ति, लक्षणा, और व्यञ्जना. वार्त्तिक कल्पनासे अर्थका ठीक २ समझना. विभक्त्यर्थ का, की, के, करके, वास्ते, लिये, इत्यादि विभ-

क्रियोका अर्थ कर्म, करण, सम्प्रदानादि इत्यादि पदार्थोंका स्पष्ट ज्ञान होना इस्को व्यक्त कहते है. ॥ ५ ॥

विकुष्टं नाम उच्चैरुच्चारितं व्यक्तपदाक्षरमितिविकुष्टम् ॥ ६

स्वरोंका उच्चतर उच्चारण होनेसे भी उसमें स्पष्टता रहनी । ६

श्लक्ष्णं नाम अद्रुतमविलंबितमुच्चनीचप्लुतसमाहार-हेलतालोपनयादिभिरुपपादनादिभिः श्लक्ष्णमित्युच्यते । ७

श्लक्ष्णम्—द्रुत, विलम्बित, मध्य इन लयकारियोंको ठीक २ समझकर जिस २ मात्रा पर तालकी अवश्यकता है उस पर ठीक देना; और आविर्भावादि दिखाना. ॥ ७ ॥

समम् नाम आवापनिर्वापप्रदेशप्रत्यन्तरस्थानानां समासः सममित्युच्यते ॥ ८

समम् स्वरका अपूर्ण उच्चारण आवाप, और न्यूनता निवार्प कहाता है. उनमें समासनं नाम प्रक्षेप करना याने जिस क्रमसे गानेकी प्रचलित मर्यादा है उस्को त्याग न करना. ॥ ८ ॥

सुकुमारं नाम मृदुपदवर्णस्वरकुहरणयुक्तं सुकुमारमित्युच्यते ॥ ९

सुकुमारम्—दांतोको विनादबाये जो पद, बर्ण स्वरोंका उच्चारण. ॥ ९ ॥

मधुरंनाम स्वभावोपनीतललितपदाक्षरगुणसमृद्धं मधुरमित्युच्यते ॥ १०

मधुरम्—स्वरोंका स्वाभाविक जो पदवर्णलालित्य उस्का उल्लङ्घन न करना. ॥ १० ॥

एवमेतद्दशभिर्गुणैर्युक्तं गानं भवति। एतद्विपरीता गीति दोषा उच्यन्ते भवन्ति चात्र श्लोकाः

गीतिमें उपर लिखे हुए १० गुण हैं. इस्से युक्त जो है उसे गायन कहते हैं. और इस्से विपरीत अपगान कहाता है. गायनकें दोषोंका वर्णन किया है जिस्मे, ऐसे श्लोक आगे लिखते है.

शङ्कितं भीतमुद्घृष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं शिरसिगतं तथा स्थान विवर्जितम्॥११॥
विस्वरं विरसंचैव विश्लिष्टं विषमाहतम्।
व्याकुलं तालुहीनश्च गीति दोषाःचतुर्दश॥१२॥

गाते समय जिस्को शंका उत्पन्न हुई उस्का गायन शंकित कहाता है. और भीतियुक्तका गान 'भीतम्' कहाता है. जिस गायनमें क्रोधसे कम्प होता है उसे उद्घृष्ठ कहते हैं अव्यक्त याने स्पष्ट नही. नासिकास्थान प्राधान्य करके जो गायन वह अनुनासिक कहाता है. कण्ठको दबाकर अथवा उस्को पीडितकर जो गाया जाता है उसे काकस्वर कहते है.

शिरसिगतं याने अति उच्च और अपरिपूर्ण गायन. स्थानविवर्जित. जिस जिस स्थान पर स्वरके उच्चारणका नियम कहा है उसे परित्याग कर स्थानान्तरमें स्वरोंको निकालना। विस्वरम्– विस्वर याने जिस ऋचामें या श्लोकमें जो स्वर नियत हैं उनके ठीक २ उच्चार न करना. विरस याने गाते समयमें गायकके अथवा श्रोताके चित्तमें खेद उत्पन्न होना. विश्लिष्ट याने वेदके

जो पर्व [हिस्से] हैं, उसे अलग २ गायन करके न दिखाना विषमाहत याने त्रिमात्रिक स्वरका दो या एक मात्रा कालमें उच्चारण करना इसी तरह द्विमात्रिकका उच्चारण तीन या एक मात्रामें करना इत्यादि. व्याकुल याने वर्णका अथवा स्वरका बदलना, तालहीन, गानेमें किसी जातका नियम न करना इत्यादि.

आचार्याःसममिच्छन्ति पदच्छेदन्तु पंडिताः।
स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विकुष्टमितरे जनाः ॥ १२ ॥

गायनमें ४ प्रकार होते हैं. वे प्रकार हरएक गानेवालेको अवश्य अभ्यस्त चाहिए, ये चार प्रकार गायन सुननेवालेके अनुरोधसे स्वीकृत हैं. गायन शास्त्राभिज्ञ जन तालके समकी ओर अथवा स्वरकी ओर ध्यान रखते हैं इस्से उनके लिए ठीक २ तालमें गाना चाहिए. दूसरे जो कोइ इतर शास्त्रके पाण्डित हैं उनोका पदपदार्थोपर विशेष ध्यान रहता है इस लिये पद पदार्थका स्पष्ट उच्चारण करना. तीसरा प्रकार गायनमें जितनी हो सके इतनी मधुरता और सुस्वरताकी आवश्यकता है क्यों कि स्त्रियोंका शास्त्र ज्ञान न रहनेसे उनको माधुर्य्य प्रिय होता है.

चौथा प्रकार यह है कि, जो कोई साधारण लोग हैं याने जिनको शास्त्रका अथवा गायनका ज्ञान नही है. ऐसे जनोको विकुष्ट याने तार स्वरका गायन प्रिय लगता है इस्से उनके लिए गायकोनें तृतीय सवन सिद्ध करना. ॥ १२ ॥

इति-तृतीय कण्डिका

अथ चतुर्थ काण्डका

पद्मपत्रप्रभःषड्ज ऋषभःशुक पिञ्जरः ।
कनकाभस्तु गान्धारो मध्यमः कुन्दसम्प्रभः ॥ १ ॥

अब स्वरोंके वर्ण कहते हैं. षड्ज स्वरका रंग पद्मपत्रके समान है. ऋषभ स्वरका „पिंजर" (रक्त) वर्ण है. गन्धार स्वरका सुवर्ण सदृश चाकचक्ययुक्त पीत वर्ण है. मध्यम स्वरका कुन्दवत् याने कुन्द पुष्पके समान है. ॥ १ ॥

पंचमस्तु भवेत् कृष्णःपीतकं धैवतं विदुः ॥ २ ॥

पंचमस्वरका काला, धैवतका चाकचक्य रहित पीतरंग और निषादका सर्व वर्ण याने रक्तपीतश्वेतकृष्णादि युक्त जो कर्बूर कहाता है सो जानना. ॥ २ ॥

पञ्चमो मध्यमःषड्ज इत्येते ब्राह्मणाःस्मृताः
ऋषभो धैवतश्चापीत्येतौ क्षत्रियावुभौ ॥ ३ ॥

पंचम, मध्यम और षड्ज इनकी ब्राह्मण जाती है. ऋषभ और धैवत ये क्षत्रिय है ॥ ३ ॥

गान्धारश्च निषादश्च वैश्या वर्द्धेन तौ स्मृतौ ॥
शूद्रत्वं विद्धि चार्द्धेन पतितत्वान्न संशयः ॥ ४ ॥

गांधार और निषाद वैश्यजातीय है क्यौं कि वे बढ जाते है और जिन जिन स्वरोंका विहित प्रमाणोंसे यदि न्यून उच्चारण किया जावे तो वे पतित कहाते है इसलिए वे शूद्र जानना ॥ ४ ॥

ऋषभोत्थित षड्जहतो धैवतसहितश्च पंचमो यत्र ॥
निपतति मध्यमा रागे तं निषादं षाडवं विद्यात् ॥ ५ ॥

ऋषभके अनन्तर षड्ज आवे और धैवत और पञ्चम स्वर जब मध्यम ग्राममें निषाद सहित गाया जावे तो उसे मध्यम ग्रामका षाडव स्वरका गायन कहना क्यों कि उसमें गान्धार स्वरका ग्रहण नहीं है. ॥ ५ ॥

यदि पञ्चमो विरमति गान्धारश्चान्तरःस्वरो भवति ।
ऋषभो निषादसहितस्तं पंचममीदृशं विद्यात् ॥ ६ ॥

जो पञ्चम स्वरके अनन्तर गांधार होवे उसके अनन्तर ऋषभ और तदनन्तर निषाद होनेसे यहभी षाडव कहाता है क्योंकि इसमें धैवतका ग्रहण नहीं है. ॥ ६ ॥

गान्धारस्याधिपत्येन निषादस्य गतागतैः ॥
धैवतस्यच दौर्बल्यान्मध्यमग्राम उच्यते ॥ ७ ॥

मध्यम ग्रामका लक्षण—जिसमें गान्धारका आधिपत्य याने आधिक्य माने पुनःपुनः उच्चारण, और निषादका "गमनागमन" माने आरोह अवरोहमें उच्चारण रहता है और धैवतका-दौर्बल्य याने एकवार उच्चारण होता है. और षड्ज और ऋषभ स्वरमें इतर पांचोका साधारणतासे स्थिति होवे; इस रीतिके स्वरसमुदायके उच्चारणको मध्यम ग्राम यह संज्ञा है. ॥ ७ ॥

ईषत्स्पृष्टो निषादस्तु गांधारश्चाधिको भवेत् ॥
धैवतः कंपितो यत्र षड्ज ग्रामं विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥

षड्जग्रामका लक्षण—षड्जके आरंभमें निषादका ईषत् याने लघुतासे उच्चारण और गन्धारका अधिकतर याने पुनःपुनः उच्चारण होवे और धैवत कम्पित और इतर स्वरका यथारुचि अधिवेशन होवे ऐसे स्वरसमुहका नाम षड्जग्राम है. ॥ ८ ॥

अन्तरस्वरसंयुक्ता काकलिर्यत्रदृश्यते ॥
तंतुसाधारितं विद्यात् पंचमस्थं तु कैशिकम् ॥ ९ ॥

अंतरस्वर संयुक्त निषाद होवे याने षड्जके आरंभमें चार श्रुतिवाला निषाद जब बोलाजावे तब वह पंचमस्थ कैशिकराग कहाता है. ॥ ९ ॥

कैशिकं भावयित्वातु स्वरैःसर्वैःसमन्ततः ॥
यस्मात्तु मध्यमे न्यासस्तस्मात् कैशिक मध्यमः ॥ १० ॥
काकलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्यं पञ्चमस्य तु ॥
कश्यपःकैशिकं प्राह मध्यमग्राम सम्भवम् ॥ ११ ॥

पूर्व श्लोकमें दिखायाहुआ कैशिकराग जब सम्पूर्ण सातो स्वरोंमें कहाजावे याने मध्यमसे आरम्भ होता हुआ द्वितीय मध्यममें स्थापित होवे याने मध्यमसे उपक्रम होकर मध्यममेंहि जब उस्की समाप्ति होती है तब वह कैशिक मध्यम ग्रामराग होता है. मध्यमग्राम उत्पन्न कैशिकरागकी काकली जहां निषादमें मालूम होती है और पंचमको प्राधान्य याने पुनः पुनः उस्का उच्चारण होता है और अवशिष्ट सर्व स्वर जहा सामान्य तया रहते है याने जिनका उच्चारण अधिक नही आथवा न्यून भी

नही ऐसे स्थितिमें इस्को काश्यप मुनि मध्यम ग्रामसंभव कौशिक राग कहते है. १० ॥ ११

गेति गेयं विदुःप्राज्ञा धेति कारु प्रवादनम् ॥
वेति वाद्यस्य संज्ञेन गान्धर्वस्य विरोचनम् ॥ १२ ॥

अब गान्धर्व शद्बका अर्थ दिखलाते है. गन्धर्व लोगोंसे जो आया सो गान्धर्व कहाता है. अब गान्धर्व शद्बके प्रत्येक वर्णोंका अर्थ लिखते है "ग" वर्ण का अर्थ पंडित जन गायन कहते है. "नामग्रहणे नामैकदेशस्यापि ग्रहणम्" याने सम्पूर्ण नामके प्रथम वर्ण कहनेकी भी पद्धति है. "ध" याने कुशलतापूर्वक वाद्योंका बजाना. और "व" यह वाद्योंकी संज्ञा है. इस रीतिसे गंधर्व शद्ब बनाहुआ है शद्बके वर्णोंका अर्थ दिखलानेसे गायन विद्यामें प्राशस्त्य अनुमित हुआ. ॥ १२ ॥

इति चतुर्थ काण्डिका.

अथ पंचमा काण्डिका.

यः सामगानां प्रथमःस वेणोर्मध्यमः स्वरः ॥
योद्धितीयःस गान्धारस्तृतीयस्त्वृषभःस्मृतः ॥ १ ॥
चतुर्थःषड्ज इत्याहुःपंचमो धैवतो भवेत् ॥
षष्ठे निषादो विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः ॥ २ ॥

सामवेदमें हातकी आंगुलियोके उपर स्वर प्रदर्शित करनेकी

रीति है. उसमे सामवेद गान करनेवाले लोगोंका जो प्रथम स्वर है वह वंश वाद्यका मध्यम स्वर जानना जो द्वितीय स्वर वह वंश वाद्यका गन्धार. इसी रीतिसे तृतीय ऋषभ जानना. और चतुर्थ षड्ज तथा पंचम धवत षष्ठ निषाद और सप्तमको पंचम समझलना. १ ॥ २

षड्जं वदति मयूरो गावो रंभति चर्षभम् ॥
अजाविकेतु गान्धारम् क्रौंचो वदति मध्यमम् ॥ ३ ॥
पुष्प साधारणे काले कोकिला वदति पंचमम् ॥
अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः ॥ ४ ॥

अब साधारणतया षड्जादि स्वरोच्चारण का नियम कहते है क्यौंकि यह रीति लोगोंमें प्रसिद्ध है कि किसीका आवाज उतरा होता है और किसीका चढा होता है. इस लिये लोक आपने आपने प्रमाण से षड्जादि स्वरोंका उच्चारण करते है.लेकिन शास्त्रकार साधारणतया यह नियम करते है कि मयूरके स्वरको षड्ज कहना और गौके स्वरको ऋषभस्वर, तथा बकरी अथवा भेडियोंका स्वर गन्धार और क्रौंचके स्वरको मध्यम कहना. ॥ ३ ॥

वसन्त ऋतुमें कोयल पंचम स्वरका उच्चारण करती है. घोडा धवत स्वरमें बोलताहै. हाती निषाद स्वरको बोलता है ॥ ४ ।

(अब स्वरोंके स्थान कहते है.)

कण्ठादुत्तिष्ठते षड्जः शिरसस्त्वृषभः स्मृतः ॥
गान्धारस्त्वनुनासिक्य उरसो मध्यमः स्वरः ॥ ५ ॥

कंठसे षड्ज बोला जाता है. ऋषभ शिरसे निकलता है. अनुनासिक्य गान्धारका स्थान है. और मध्यम स्वरका उर [छाती] स्थान है. ५ ॥

उरसः शिरसः कण्ठादुत्थितः पंचमःस्वरः ॥
ललाटात् धैवतं विद्यान्निषादः सर्व संधिजम् ॥ ६ ॥

उरसे शिरसे और कण्ठसे पंचम स्वर निकलता है. ललाटसे धैवत. और सम्पूर्ण संधिस्थान से निषाद उत्पन्न होता है. ६ ॥

नासाकण्ठमुरस्तालु जिव्हा दन्तांश्च संस्थितः ॥
षड्भिः संजायते यस्मात्तस्मात्षड्ज इति स्मृतः ॥७॥

नासिक, कंठ, उर, तालु, जिव्हा, और दन्त, इन ६ छे थानों से षड्जस्वरकी उत्पत्ति जानना.इसी लिए इस्को षड्ज ऐसी यौगिक संज्ञा दि है. " **षड्भ्योजातः षड्जः ७ ॥**

वायुः समुत्थितो नाभेः कंठशीर्षसमाहतः ॥
नर्दत्यृषभवत्र्यस्मात् तस्मात् ऋषभ उच्यते ॥ ८ ॥

वायु नाभिकंदसे निकलकर कंठ और शिरोभागमें स्पर्श करता हुआ बैल सदृश ध्वनिको देता है इस लिए इस्को ऋषभ ऐसी संज्ञा है. ८ ॥

वायुःसमुत्थितोनाभेः कंठ शीर्ष समाहतः ॥
नासागन्धावहःपुण्यो गन्धारस्तेन हेतुना ॥ ९ ॥

वायु नाभिकमलसे निकलता हुआ कंठ और शिर याने नासिका भागको स्पर्श कर जिस ध्वनिको उत्पन्न करता है उसे गन्धार कहते है. ९ ॥

वायुः समुच्छ्रितो नाभेरुरोहृदि समाहतः ॥
नाभिं प्राप्तो महानादो मध्यमत्वं समश्नुते ॥ १० ॥

नाभिकमलसे उठा हुआ वायु उर और हृदयको प्राप्त हो कर जब महानादको उत्पन्न करता है तब वह मध्यम संज्ञाको प्राप्त होता है. १० ॥

वायुः समुत्थितो नाभेरुरो हृत्कंठ शिरोहतः ॥
पञ्चस्थानस्थितस्यास्य पंचमत्वं विधीयते ॥ ११ ॥

नाभिकंदसे समुत्थित वायु जब उर, हृदय, कंठ और शिरको स्पर्श करता हुआ शद्बको उत्पन्न करता हैं तब उसे पंचम कहते है. क्यौंकि वह स्वर पांच स्थानोकों स्पर्श कर निकलता है. ११ ॥

धैवतंच निषादंच वर्जयित्वा स्वरद्वयम् ॥
शेषान् पंचस्वरांस्त्वन्यान्पंचस्थानोच्छ्रितान् विदुः १२

धैंवत और निषाद इन दो स्वरोंको छोडकर शेष पांच ५ स्वर ५ स्थानसे निकलते है ऐसा जानो. १२ ॥

पंचस्थान स्थितत्वेन सर्व स्थानानि धार्यते ।
अग्निगीतः स्वरःषड्ज ऋषभो ब्रह्मणोच्यते ॥ १३ ॥
सोमेन गीतो गांधारो विष्णुना मध्यमः स्वरः ।

पंचमस्तु स्वरोगीतो नारदेन महात्मना ॥ १४ ॥

षड्जस्वर अग्नीने गाया है. ब्रम्हाजीने ऋषभस्वर गाया है गांधार चंद्रमाने गाया, मध्यम श्री महाविष्णूनें गाया है सो जानना और पंचमस्वर श्री महात्मा नारदऋषिने गाया हैं. ॥ १४ ॥

धैवतश्च निषादश्च गीतौ तुम्बुरुणा स्वरौ ॥

धैवत और निषाद को तुम्बुरुने गाया ॥

अब इनकी अधिष्ठात्री देवता कहते है.

आद्यस्य दैवतं ब्रह्मा षड्जस्याप्युचते बुधैः ॥ १५ ॥

आद्यस्वरका दैवत ब्रम्हाजी है. ॥ १५ ॥

तीक्ष्णदीप्तिप्रकाशत्वात् ऋषभस्यहुताशनः ॥

तीक्ष्णता और दिप्तिप्रकाश करनेवाली है इस लिये ऋषभ स्वरकी देवता अग्नी है.

गावःप्रगीते तुष्यान्ति गान्धारस्तेन हेतुना ॥ १६ ॥

श्रुत्वाचैवोपतिष्ठन्ति सौरभेया न संशयः ॥

गो दैवत गान्धार का जानना " गान्धारयति " सन्निहितं करोति ऐसी गान्धार शद्धाकि व्युत्पत्ति है. याने गान्धार स्वरोच्चार सुनते हि गो देवता सन्निध आती है ऐसा इस्का प्रभाव है यह निःसंदेह जानना.

सोमस्तु पंचमस्यापि दैवतं ब्रह्मराट् स्मृतम् ॥ १७ ॥

निन्हासोयश्च वृद्धिश्च ग्राममासाद्य सोमवत् ॥

तस्मादस्य स्वरस्यापि धैवतत्वं विधीयते ॥ १८ ॥

जो ब्राम्हणोका राजा सोम है सो पंचम स्वरका दैवत्य जानना. धैवत स्वरकी वृद्धि और ऱ्हास याने न्यूनता चंद्रमाके सदृश षड्जादि ग्राम में देख पडती है. इसी कारण से इस्को धैवत यह संज्ञा दिई है, और इस्का भी चंद्रमा देवता हैं. ॥ १८ ॥

निषीदन्ति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना ।
सर्वांश्चाभिभवत्येष यदादित्योस्य दैवतम् ॥ १९ ॥

षड्जादि ६ स्वर इसमें लीन होते है इस लिये इस्का नाम निषाद है. जैसे सूर्यकी प्रभामें ग्रहनक्षत्रादिक छिप जाते है वैसे ही षड्जादिस्वर निषादमें लीन होते है, इस लिये इस्का देवता भि सूर्य ही माना गया है. उपर लौकिक और वैदिक उभय साधारण रीतीसे गायनके साधारण लक्षण लिखे हैं ॥ १९ ॥

अब यहांसे सामवेदके हि गायन लक्षण कहते हैं.

इति पंचमी कण्डिका

॥ अथ षष्ठी काण्डिका. ॥

दारवी गात्रवीणाच द्वेवीणे गान जातिषु ।
सामिकी गात्रवीणातु तस्याः श्रृणुतलक्षणम् ॥ १ ॥

काष्ट और गात्र इन भेदोंसे दो प्रकार वीणामें है. उसमें गात्र वीणा केवल सामवेदके गायनमें उपयुक्त होता है सो उस्का लक्षण सुनो ॥ १ ॥

गात्रवीणातुसाप्रोक्तायस्यां गायन्ति सामगाः ॥
स्वर व्यंजन संयुक्ताअंगुल्यंगुष्ठ रंजिता ॥ २ ॥

अंगुली और अंगुठा (अंगुष्ट) इससे जिस स्वर या व्यंजन संयोगको दिखलाया जाता है, और जिस्से ब्राह्मण साम गायन करते है. उसे गात्रवीणा कहते है ॥ २ ॥

हस्तौ सुसंयुतौ धार्यौ जानुभ्यामुपरिस्थितौ ॥
गुरोरनुकृतिं कुर्याद्यथा ज्ञानमतिर्भवेत् ॥ ३ ॥

आपने जानु (घुटना) पर हातोंको अच्छे प्रकार लगाकर गुरु जिस प्रकार से अंगुष्ठ को अंगुलिओ पर चलाते है उसीके अनुसार शिष्यने चलाना चाहिये जैसे आपने को पूर्णतासे ज्ञान हो जावे ॥ ३ ॥

प्रणवं प्राक् प्रयुंजीत व्याहृतीस्तदनन्तरम् ।
सावित्रीं चानु वचनं ततोवृतान्तमारभेत् ॥ ४ ॥

साम गान शुरु करने के पहिले प्रणव का प्रयोग करके पश्चात् व्याहृतित्रय " भूर्भुवः स्वः " इनका उच्चारण करे. तदनन्तर सावित्रीका उच्चार कर वेदपाठ को आरम्भ करे ॥ ४ ॥

प्रसार्य चाङ्गुलीःसर्वारोपयेत् स्वर मण्डलम् ।
नचाङ्गुलिभिरङ्गुष्ठमङ्गुष्ठेनाङ्गुलीःस्पृशेत् ॥ ५ ॥

स्वर देनेकी रीति-- सम्पूर्ण अंगुलीयोंको खोलकर स्वर मण्डल

की स्थापना करे और अंगुलीयोंको इस रीतिसे रख्खें की ना तो अंगुलिका स्पर्श अंगुठे को होवे न अंगुठेका स्पर्श अंगुलीको होय ॥ ५ ॥

विरला नाङ्गुलीः कुर्यान्मूले चैनां न संस्पृशेत् ।
अंगुष्ठाग्रेण तां नित्यं मध्यमे पर्वाणि न्यसेत् ॥ ६ ॥

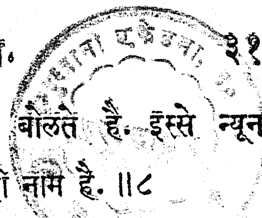
स्वर देते समय अंगुलियों को विरल याने अलग २ न करे फैली हुई अंगूलियोंका ऐसा संमेलन होना चाहिए की जहां तक बने वहां तक दो अंगूलीके मध्यमे छिद्र न देख पडे. और अंगूठे से अंगुली मूलका भी स्पर्श न करे, किन्तु अंगुष्टाग्रसे अंगूलियों के मध्य पर्वका स्पर्श करे ॥ ६ ॥

मात्र द्विमात्र वृद्धानां विभागार्थं विभागवित् ।
अंगुलीभिर्द्विमात्रं तु पाणेः सव्यस्य दर्शयेत् ॥ ७ ॥

कोई स्वर एक मात्रिक अथवा द्विमात्रिक होवे तो उस्का विभाग सव्य हस्तके अंगूलीसे प्रदर्शित करे सव्य याने वाम हस्त इस मे कोशका प्रमाण आगे लिखा है. " वामं शरीरं सव्यं स्यात् ॥ ७ ॥

त्रिरेखा यत्र दृश्येत सन्धिस्तत्र विनिर्दिशेत् ॥
स पर्व इति विज्ञेयः शेषमन्तरमन्तरम् ॥ ८ ॥

अंगुलियों मे ३ रेखा जहा देखी जाती है उसे सन्धि अथवा



र्व कहते हैं. इसी को सन्ध्यंत्तर स्वर बोलते हैं. इससे न्यून अन्तर को अन्तर ऐसा सामान्य एक ही नाम है. ॥८

यवान्तरन्तु साम्निस्यात् ऋक्षुकुर्यात्तिलांतरम् ॥
स्वरान् मध्यम पर्वःसु सुनिविष्टां निवेशयेत् ॥ ९ ॥

साम वेदमें अंगुष्ठ और तर्जनीके मध्यमें एक जवका अंतर रखना. ऋग्वेद में एक तिल इतना अन्तर रखना परन्तु जिस कालमें स्वरका उच्चारण होता है उसी कालमें अंगुठेको अंगुलियो पर रखे न उस्के पूर्व में अथवा पश्चात् ॥ ९ ॥

नचात्र कम्पयेत्किंचिदंगस्यावयवं बुधः ॥
अधस्तनं मृदुन्यस्य हस्तमास्ते यथाक्रमम् ॥ १० ॥

गायकने स्वरोच्चारके समय शरीर किंचित्मात्र भी हिलाना न चाहिए. और कमरके अधोभागको शिथलकर केवल हस्त मात्र यथाक्रम (गुरुपरम्परा दर्शित मार्गसे) हिलावे ॥ १० ॥

अभ्रमध्ये यथा विद्युत् दृश्यते मणिसूत्रवत् ॥
एषच्छेदो विवृत्तीनां यथा वालेषु कर्तरी ॥ ११ ॥

जैसे स्थिर अभ्रमें विद्युल्लता, सूत्रमें मणका अथवा वालोंमें कर्तरी (कैची) स्थिर आधारमें चलायमान होती हैं उसी रीतीसे शरीरको स्थिरकर अंगुलिमातको हिलावे ॥ ११ ॥

कूर्मांगानीवसंहृत्य चेष्टां दृष्टिं दिशन्मनः ॥
स्वस्थः प्रशांतो निर्भीतो वर्णानुच्चारयेब्दुधः ॥ १२ ॥

जैसे कूर्म याने कछवा आपने हस्त पादादिकोको एकत्र कर शरीर सम्बन्धी चेष्ठाको बंद करके केवल नेत्र व्यापारकोही करता हुआ स्वस्थ शांत और निडर होकर रहता है इसी रीती से मनुष्यनेभि निर्भीक और प्रशांत तथा चेष्ठा राहित होकर स्वर और वर्णका उच्चारण करना चाहिए ॥ १२ ॥

नासिकायास्तुपूर्वेण हस्तं गोकर्णवद्धरेत्
निवेश्य दृष्टिं हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिंतयेत् ॥ १३ ॥

दक्षीण याने दहिना हस्त गौके कर्ण समान कर उस हस्त के अग्र पर दृष्टीको स्थिर करे अनन्तर शिक्षाशास्त्रमें दर्शित मार्गसे पाठ करना आरम्भ करे. ॥ १३ ॥

समसुच्चारयेद्वाक्यं हस्तेनच मुखेनच ॥
यथैतोच्चारयेद्वर्णा स्तथैवैनां समापयेत् ॥ १४ ॥

जिस कालमें स्वरोच्चार किया जावेगा उसी कालमें अंगुठेको अंगुलियोपर रखना चाहिये न तो पहिले धरे या पीछे और जिस लयकारी में मन्त्रपाठ शुरू होगा उस लयकारी को मन्त्रके समाप्ति कालतक दृढ रखना उचित है. ॥ १४ ॥

नाभ्याहन्यान्ननिर्हन्यान्नप्रगायेन्नकम्पयेत् ॥
समं सामानिगायेत व्योम्निश्येन गतिर्यथा ॥ १५ ॥

श्येन पक्षी कि गति जैसी स्थिर और शान्त रहती है यानें श्येन पक्षी उडते समय जैसा पक्ष को स्थिरतासे धारण करता है. उसी रितीसे सामगायन करने वालोनें आपना शरीर कम्प रहित और शान्त रखना चाहिये. ॥ १५ ॥

यथाप्सुचरतांमार्गो मीनानांनोपलभ्यते ॥
आकाशेवा विहंगानां तद्वत्स्वरगताश्रुतीः ॥ १६ ॥

जैसे जल में चलते हुए मत्स्यों के पादकी अथवा आकाश में उडने वाले विहंग याने पक्षीकी गति पादादि चिन्होंसे जानी नही जाती उसी रीतीसे स्वरों की श्रुति आकार से मालूम नहीं होती किन्तु ध्वनि विशेषसे जानी जाती है, ॥ १६ ॥

यथा दधनि सर्पिःस्यात्काष्ठस्थे वा यथानलः ॥
प्रयत्नेनोपलभ्येत तद्वत्स्वरगताश्रुतिः ॥ १७ ॥

जैसे दही में घी अथवा काष्ठ में वान्हि स्पष्टतासे देखा नहीं जाता किंतु घर्षणादिकोसे स्पष्ट होजाता है उसी रीती से स्वर स्थित श्रुती भी स्वर में लीन रहती है वह अति सूक्ष्म व्यापार से व दृढाभ्यास से शनैः शनैः मालूम होती है. जैसे षड्जादि स्वर से ऋषभादि स्वरोका उच्चारण याने प्रथम स्वरसे द्वितिय

स्वरकी ओर संक्रमण मण्डूक गतीके सदृश किया नही जाता किन्तु सर्पादि प्राणि यथा बिचमें स्थान कोन छोड गमन करते है इसी रीतीसे एक स्वरसे दूसरे स्वरके तरफ आवाज को ले जाना उचित है. ॥ १७ ॥

स्वरात्स्वरं संक्रमस्तु स्वरसन्धिमनुल्बणम् ॥
अविछिन्नं समंकुर्यात् सूक्ष्मं छायातपोपमम् ॥ १८ ॥

जैसा गायन में षड्ज स्वरका उच्चारण करके अनन्तर मध्य मे एक या दो या चार स्वरको छोडकर गन्धार मध्यम धैवत या निषाद स्वर का उच्चारण किया जाता है. इस तरह सामवेदमें कहने की मर्यादा नही है. तो जैसा आतप (धूप) के आगमन में जैसी छाया धीरे २ कम होती जाती है उसी रीतिसे एक स्वरसे अन्य स्वरकी ओर गमन करना. स्वरके आकर्षण करनेमें ६ प्रकार के दोष हैं वे नीचे लिखते है ॥ १८ ॥

अनागतमतिक्रांतं विछिन्नं विषमाहतम् ॥
तन्वन्तमस्थितान्तश्च वर्जयेत्कर्षणं बुधः ॥ १९ ॥

१ अनागत याने प्रथम स्वरको खींचकर द्वितीय स्वर करना

२ अतिक्रान्तम्-- एक स्वरको छोडकर तृतीय स्वरका उच्चारण करना.

३ विच्छिन्न याने प्रथम स्वर के मात्राका विच्छेद करके द्वितीय स्वरके मात्राका आरंभ करना.

४ विषमाहतम्-- याने प्रथम स्वरको हिलाते हुए द्वितीय स्वर तक गमन करना.

वेद के स्वरोच्चार करने के लिए यह नियम सिद्ध है कि ऱ्हस्व दीर्घ और प्लुत याने एक, दो और तीन मात्रासे अधिक काल तक स्वरको ठेहराना न चाहिए उससे अधिक ठेहराने को "तन्वतम्" कहते है. लेकिन तीन मात्रासे अधिक काल तक स्वर को ठेहराना यह वेदसे अतिरिक्त रागादिको का गायन करने वाले जन गुण समझते है.

५ अस्थितान्तम्-- जो प्लुत स्वर के चिन्हसे चिन्हित स्वर होगा उसे तीन मात्रा तक न ठेहराना और ऱ्हस्व दीर्घ को ठेहराना इत्यादि उपर लिखे हुए छे दोषोंसे सामवेद गायन करनेवालोनें बचना चाहिए. इन दोषोसे बच कर जो साम गान करते है उनको साम-वेद के तत्ववेत्ते कहते हैं. ॥ १९ ॥

स्वरस्थानाच्च्युतोयस्तु स्वंस्थानमति वर्तते ॥
विस्वरं सामगाः कुर्युर्विरक्तमातिवीणिनः ॥ २० ॥

षड्जं वदति मयूरो ,, इत्वादि प्रथम कहे हुए स्वरस्थानसे पतित जो स्वर है उस्को सामगायन करने वाले लोग विस्वर कहते है और इतर जो रागादि गायन करने वाले जन है वे उस दोष का व्यवहार विरक्त शद्बसे करते हैं. ॥ २० ॥

अभ्यासार्थे द्रुतांवृत्तिं प्रयोगार्थे तुमध्यमाम् ॥
शिष्याणामुपदेशार्थे वृत्तिरिष्टा विलम्बिताम् ॥ २१ ॥

इस श्लोक का यह मतलब है कि आपने स्वयं अभ्यास करना होवे तोबहुत शीघ्रतासे करना. और सभा इत्यादिकोंमें लोगन को सुनाना होवे तो मध्यम लयकरी में सुनावे और शिष्यको उपदेश करने के समय विलम्बित लयकारी कहे इस रीतिसे द्रुत मध्य विलंबित लयकारीयोंका उपयोग करें- ॥ २१ ॥

गृहीत ग्रन्थ एवंतु ग्रन्थोच्चारण शिक्षकान् ॥
हस्तेनाध्यापयेत् शिष्यान् शैक्षेण विधिनाद्विजः २२ ।

इसी रीतीसे अबतक कहे हुए शिक्षणसे जिनोंनें वेदको ग्रहण कियाहै ये ही जन शिक्षक बननेलायक हें और जोजन शिक्षोक्त पद्धतीसे शिक्षित नही है उनको पढानेका अधिकार नही है.।२२।

इति षष्ठी काण्डिका समाप्ता.

अथ सप्तम काण्डिका.

क्रुष्टस्य मूर्द्धनिस्थानं ललाटे प्रथमस्यतु ॥
भ्रुवोर्मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्यच कर्णयोः ॥ १ ॥

प्रथम क्रुष्ट (तार) का उत्पत्ति स्थान कहा. अब तार सप्तक

के स्वरोंके स्थितिस्थानको प्रदर्शित करते हैं क्रुष्ट स्वरकी स्थिति मूर्द्धास्थान में है. यहां पर क्रुष्ट याने सप्तम, पंचम, और षड्ज की ललाट में स्थिति है. ऋषभकी स्थिति भ्रूमध्यभाग में है- गन्धार की स्थिति दोनो कान में हैं. ॥ १ ॥

कण्ठस्थानं चतुर्थस्य मन्द्रस्योरसितूच्यते ।
अतिस्वारस्य नीचस्य हृदिस्थानं विधीयते ॥ २ ॥

मध्यम की कंठस्थान में स्थिति है. मंद्रकी उरोभाग में स्थिति है. और धैवत की हृदयभाग में स्थिति है सो जानना. । २ ।

अंगुष्ठस्योत्तमेकुष्टो ह्यंगुष्ठे प्रथमः स्वरः ।
प्रादेशिन्यान्तु गान्धार ऋषभस्तदनन्तरम् ॥ ३ ॥

क्रुष्ट संज्ञक स्वरको अंगुठेके उत्तम (प्रथम) भागमें दिखलावे गान्धार तर्जनी पर दिखलावे मध्यम पर ऋषभ स्वरको दिखलावे. ॥ ३ ॥

अनामिकायां षड्जस्तु कनिष्ठिकायांच धैवतः ।
तस्याधस्ताच्चयोन्यास्तु निषादं तत्र विन्यसेत् ॥ ४ ॥

षड्जको अनामिका पर और कनिष्ठिका पर धैवत स्वर को दिखलावे उस्के नीचे जो योनि सदृश भाग है वहां पर निषाद को प्रदर्शित करे ॥ ४ ॥

अपर्वत्वादसञ्ज्ञत्वादव्ययत्वाच्च नित्यशः ।
मन्द्रोहिनुहिभूतस्तुपरिस्वार इति स्मृतः ॥ ५ ॥

सामवेद में निषादकि परिस्वार ऐसी भी एक पृथक् सन्ज्ञा है. क्योंकि वह अंगुलीके पर्व में प्रदर्शित किया नही जाता. और छे स्वर के समुदायसे पृथक् माना जाता है इस लिए उस्को वैदिक असंज्ञक भी कहते हैं. लिंग विभक्ति एकवचनादिको से रहित होने से इस्को अव्यय भी कहते हैं. (हिनु हिं भूतः) याने छे स्वर का यह प्रयोजक भी माना जाता है. क्रुष्टादि गीती में सुना जाता है इस लिए यह देवताओंको संतुष्ट करता है, यह स्वर " मंत्र संचेतन " स्वाध्याय ,, इत्यादि कार्योंकाभी बडा उपकारी हैं इन सम्पूर्ण कार्योंको प्रतिपादन करने के लिए इस्को उपर लिखि हुइ संज्ञा दी गई हैं. ।। ५ ।।

क्रुष्टेन देवा जीवन्ति प्रथमेन तु मानुषाः ।।
पशवस्तु द्वितीयेन गन्धर्वाप्सरसस्त्वनु ।। ६ ।।

क्रुष्ट स्वर के आधार से देव लोग रहते हैं षड्ज के आधार से मनुष्य लोग, ऋषभ स्वर के आधार से पशु, तथा अप्सरा और गन्धर्व ये गान्धार के आधार से निर्वाह करते हैं. ।। ६ ।।

अण्डजाःपितरश्चैव चतुर्थ स्वर जीविनः ।।
मद्रञ्चैवोपजीवन्ति पिशाचासुर राक्षसाः । ७ ।

अण्डज याने पक्षी सर्पादि पितृ लोग मध्यम स्वर के आधारसे निर्वाह करते हैं. पिशाच असुर और राक्षस मन्द्र स्वरके आधारसे निर्वाह करते है. ।। ७ ।।

अतिस्वारेण नीचेन जगत्स्थावर जङ्गमम् ।
सर्वाणि खलु भूतानि धार्यंते सामिकैःस्वरैः ॥ ८ ॥

स्थावर जङ्गम रूप जितना जगत् है वह सब अतिस्वार निषाद के आधार पर है. अधिक क्या कहे यावत् प्राणि मात्र सामिके स्वर के आधार से वास्तव्य करते हैं. ॥ ८ ॥

दीप्तायता करुणानां मृदुमध्यमयोस्थता ।
श्रुतीनां यो विशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते ॥ ९ ॥

स्वर विशेष जो श्रुति उनका ज्ञान आवश्यक है इससे उनका भी थोडासा व्याख्यान करते हैं. दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु, मध्ये इत्यादि जाति विशिष्ट श्रुतियोंको जो नही जानते वे आचार्य नहीं कहावेंगे. और श्रुति विशेष के भेद को न जानने वाले जन सामवेद के पढाने में अधिकारी नही हो सक्ते. यदि श्रुति विशेषके भेद को न समझने वाले गुरु शिष्यको उपदेश करेंगे तो वे आप अधर्म के भागी होते हुए परम्परया आपने शिष्य प्रशिष्यको भी प्रायश्चित्ती बनावेंगे. ॥ ९ ॥

दीप्ता मन्द्रे द्वितीये च म चतुर्थे तथैवतु ।
अतिस्वारे तृतीयेच क्रुष्टेतु करुणा श्रुतिः ॥ १० ॥

सामवेदके स्वरोंकी विशेष श्रुति कहते हैं. पांचही स्वरोंकी श्रुति दिप्ता जाति युक्त जाननी. प्रथम स्वरकी मृदु जातिवाली और सप्तम स्वर की करुणा जातिवाली श्रुति जाननी. ॥ १० ॥

श्रुतयोन्या द्वितीयस्य मृदुमध्या युताः स्मृताः ।
तासामपि तु वक्ष्यामि लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥

द्वितीय स्वरकी पूर्वमें दीप्ता श्रुति कही अब उपाधि वशसे अन्य २ श्रुति हो जाती है उनके लक्षण कहते हैं. ॥ ११ ॥

आयतात्वं भवेन्नाच मृदुत्वंतु विपर्यये ।
स्वे स्वरे मध्यमत्वंतु तत् समीक्ष्य प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥

तृतीय स्वर पर रहनेसे द्वितीय स्वरकी श्रुति आयता जाति वाली कहाती है. चतुर्थ स्वर पर होनेसे मृदु जातियुक्त कहाती है. और इनसे अन्य स्वर पर होवे तो मध्यम जाति युक्त श्रुति कहाती है. इस रीतीसे अवधारणा याने निश्चय करके सामवेद का प्रयोग करना. इनके उदाहरणः—सन, इन्द्रः, शिवः सखा, उद्द्रुदभिश्रुतामयं वर्तोहा" ये हैं. अब द्वितीय स्वरकी दीप्ता जाती युक्त श्रुति कब होती है सो कहते हैं ॥ १२ ॥

द्वितीये विरतायांतु क्रुष्टश्च परतो भवेत् ।
दीप्तां तांतु विजानीयात् प्रथमे न मृदु स्मृताः ॥ १३ ॥
अत्रैव विरतायांतु चतुर्थे न प्रवर्तते ।
तथा मन्द्रे भवेत् दीप्ता साम्नश्चैव समापने ॥ १४ ॥

क्रुष्ट संज्ञक स्वर पर होनेसे ऋषभ स्वरमें विरता संज्ञक जो श्रुति है वह दीप्ता जाति युक्त कहाती है. उदाहरण—" ओ इ, वा, इ उं उदाहरण में प्रथम स्वरकी श्रुति मृदुजाति युक्त

है और वह चतुर्थ स्वरपर रहते मृदुजाति युक्त होती है. ॥ १३ ॥

और अन्य २ स्वरोंमें गमन करे तो दीप्ता कहाती है. इसी रीतीसे सामके समाप्ति में कोईभी स्वर शृुति दीप्ता कहाती है. उदाहरण-" औ हो वा २ हो ३ हो २ वा २ हा इडा २ इत्यादिको में विरता या दीपृता श्रुति निषिद्ध होती है. ॥ १४ ॥

नाविरते शुतिं कुर्यात् स्वरयोर्नापि चांतरे ।
नच ह्रस्वेच दीर्घेच नचापि घुटसंज्ञिने ॥ १५ ॥

स्वरित के आसमाप्ति काल में आयता दि जाति युक्त श्रुतियोंका उच्चारण न करे. किन्तु तत्सदृश स्वरोंका उच्चारण करना. स्वरके समापृति में भी विच्छेद रहित जो गायन उसमें मध्य भागमें भी श्रुतिओंका उच्चारण न करे. जैसे " सेन इन्द्रः शिवः सखा" इस मन्त्र के उदाहरण में ह्रस्व अथवा दीर्घ अक्षर को गायन करते समय भी श्रुतिका उच्चारण न करे किन्तु प्लुत के उच्चारण में हि शृुति का उच्चारण करना चाहिये॥ १५॥

अब घुट संज्ञा किसकी है इस्का लक्षण नीचेके श्लोक में लिखते हैं.

द्विविधा गतिः पदान्तः स्थितसन्धिः सहोष्माभिः ।
पञ्चस्वेतेषु स्थानेषु विज्ञेयं घुटसंज्ञिकम् ॥ १६ ॥

*तालव्य इकार का आ, इ, भाव आ, उ, भाव इस प्रकारकी दो गति है. उन में भी श्रुतिओंका उच्चारण न करना. इसी रितीसे पदान्त सम्बन्ध तीन ३ प्रकारका है. प्रथम प्रकार जिस्का सन्धि उष्मा संज्ञक जो शषसह इन्के साथ हुआ है सन्धि जिनोकी ऐसे स्थलमें भी दीप्तादि जाति युक्त श्रुति का, उच्चारण न करना. इन स्थानोंको घुट ऐसी भी संज्ञा है. ॥ १६ ॥

स्वरान्तराविरतानि ह्रस्वदीर्घे घुटानिच ।
श्रुतिस्थानेष्वशेषाणि श्रुतिवत् स्वरतो भवेत् ॥१७॥

स्वर या स्वरान्तर असमाप्त होवे. ह्रस्व दीर्घ अथवा घुट संज्ञित होवे तो श्रुतियोंका उच्चारण न करना चाहिए, किन्तु श्रुतिके सदृश स्वरका ही उच्चारण करना. ॥ १७ ॥

दीप्तामुदात्तेजानीयात् दीप्तांच स्वरिते विदुः ।
आनुदात्ते मृदुर्ज्ञेया गन्धर्वा श्रुति संपदः ॥ १८ ॥

गान्धर्व गानमें श्रुतिओंके उच्चारणके अभावमें उनके सदृश स्वरोंका उच्चारण करना ऐसा कहा. वे स्वर निम्न लिखित प्रमाणसे कहना चाहिए. उदात्त और स्वरित स्वरमें दीप्ता जातिके स्वरों का उच्चारण करना और अनुदात्तमें मृदु जाति युक्त स्वरोंका उच्चारण करना. ॥ १८ ॥

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितप्रचिते तथा ।
निघातश्चेति विज्ञेयः स्वरभेदस्तु पञ्चधा ॥ १९ ॥

स्वरोंमें पांच ५ भेद हैं. प्रथम उदात्त, द्वितिय, अनुदात्त तृतीय स्वरित, चतुर्थ प्रचित, और पंचम निघात, उनमें स्वरित से पर जो स्वरित वह प्रचय कहाता है. और स्वरितमें हि आघात करता है इस लिये वह स्वरित निघात कहाता है. और इस्से अन्यको शुद्ध स्वरित कहते हैं.

इति सप्तमी कण्डिका.

अब तक सामिक स्वरके प्रसंगसे कहि कहि ऋग्यजुः स्वरके लक्षण कहे हैं अब यहांसे आगे केवल ऋक् स्वरोंकेहि लक्षण कहते हैं.

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आर्चिकस्य स्वरत्रयम्।
उदात्तश्चानुदात्तश्च तृतीयःस्वरितःस्वरः ॥ १ ॥

ऋग्वेदमें प्रचय और निघात यह संज्ञा स्वरित विशेषकी है. ॥ १ ॥

य एवोदात्त इत्युक्तःस एव स्वरितात्परः ।
प्रचयः प्रोच्यतेतज्ज्ञैर्नचान्यत्र स्वरान्तरम् ॥ २ ॥

जिसकी उदात्त संज्ञा है वही स्वर स्वरितसे पर होगा तो प्रचय कहाता हैं. किंतु वह स्वरांतर नही है. ॥ २ ॥

वर्णस्वारोतीतःस्वारःस्वरितो द्विविधःस्मृतः ।
मात्रिको वर्णएवन्तु दीर्घस्तत्स्वरितादनु ॥ ३ ॥

चतुर्थ वर्ण स्वरः । पंचम अतीतः स्वरः । षष्ठ एक मात्रिको वर्णः । और सप्तम दीर्घः ॥ ३ ॥

सतु सप्त विधोज्ञेयः स्वरः प्रत्यय दर्शनात् ।
पदेन तु सविज्ञेयो भवेद्यो यत्र यादृशः ॥ ४ ॥

ये स्वर अनुभवसे सात प्रकार के माने गये है, उनका ज्ञान प्रयोगसे होता है. ॥ ४ ॥

सप्तस्वरान्प्रयुंजीत दक्षिणं श्रवणं प्रति ।
आचार्यैर्विहितं शास्त्रं पुत्रशिष्यहितैषिभिः ॥ ५ ॥

पूज्य आचार्यों नें महान् प्रयत्नसे पुत्र और शिष्य इनके अभ्युदयार्थ सप्त स्वरोंका ज्ञान बताया है. इसी कारण उनके परिश्रम सुफल होनेके लिए उसका विचार पूर्वक ज्ञान करलेना आवश्यक है. ॥ ५ ॥

उच्चादुच्चतरंनास्ति नीचान्नीचतरं तथा ।
वैस्वर्ये स्वारसंज्ञायां किंस्थानं स्वार उच्यते ॥ ६ ॥

यदि उच्चसे उच्चतर और नीचसे नीचतर स्वरका उच्चारण किया जावे तो उस उच्चारण को विस्वर कहते हैं. ॥ ६ ॥

उच्चनीचस्ययन्मध्ये साधारणमिति श्रुतिः ॥
तंस्वारं स्वारसंज्ञायां प्रतिजानन्ति शैक्षिकाः ॥ ७ ॥

अवग्रहात्परं यत्र स्वरितः स्यादनन्तरम् ।

तिरोविरामं तंविद्यादुदात्तोयद्यवग्रहः ॥ ५ ॥

अवग्रहः विग्रहः , उदात्त है पर जिस्के ऐसा जो स्वरित उसे तिरोविराम कहते हैं. विष्कभिते विस्कभित इत्यादि. । ५ ।

इकारं यत्र पश्येयुरिकारेणैव संयुतम् ।

उदात्तमनुदात्तेन प्राश्लिष्टं तं निबोधत ॥ ६ ॥

अनुदात्त इकारका जहां संयोग होता है वह प्राश्लिष्ठ कहाता है. अधाहिइन्द्रः अधाहीन्द्रः इत्यादि ॥ ६ ॥

स्वरेचेत्स्वरितं यत्र विवृता यत्र संहिता ।

एतत्पादान्त वृत्तस्य लक्षणं शास्त्रचोदितम् ॥ ७ ॥

अकारादि स्वर पर रहते जहां स्वरितोंकी संहिता दृष्ट है औ, पूर्व स्वरसे विवृत याने असंमिलित है वहां पादवृत्त नामक सप्तम स्वर है क ईम् कईवेत्यादि ॥ ७ ॥

जात्यःस्वारः सजात्येन श्रुन्द्रयग्रे क्षैम उच्यते ।

तेगन्वताभिनिहितस्तैरव्यञ्जन उच्यते ॥ ८ ॥

तिरो विरामो विष्कभिते प्रश्लिष्ठो हींद्रगर्विणः ।

पादवृत्तः कई वेद स्वाराः सप्तैव पादयः ॥ ९ ॥

इन दोनों श्लोकोंकी व्याख्या पूर्वमें हो चुकी है. ॥ ८।९ ॥

उच्चादेकस्वरात्पूर्वात्स्वयतेयदिहाक्षरम् ।

स्वराणां जात्यवर्ज्जानामेषामकृतिरुच्यते ॥ १० ॥

उदात्तके अनंतर जात्य स्वार वर्ज उच्चार्यमाण स्वरित स्वार संज्ञक कहाता है. ॥ १० ॥

चत्वारस्त्वादितःस्वाराः कम्पं पुष्यन्ति शास्त्रतः ।
उदात्ते वैकर्णंचैवा जुहृत्रग्निस्तत्रदर्शनम् ॥ ११ ॥

इकारान्त उकारान्त पद पर रहते, तथा उकार पर है जिस्के ऐसा ओकार पर रहते तथा सन्ध्यक्षर पर रहते जो स्वार वह कम्पको प्रदर्शित करता है. उदाहरणः—उपत्वा जुहृ इति· संध्यक्षरका उदाहरण उपत्वा जुह्वो ममेत्यादि. जुव्होग्निस्तत्र दर्शनम् ॥ ११ ॥

इति द्वितीयस्य प्रथम कण्डिका

इकारान्ते पदे पूर्वे उकारे परतः स्थिते ।
ह्रस्वं कम्पं विजानीयान्मेधावीनात्रसंशयः ॥ १

चारों स्वरोंको कहीं कही ह्रस्व भी किया जाता है.

इकारान्त पद पूर्वमें होवे और उकारपर होवे तो वह ह्रस्व कम्प कहलाता है ऐसे पंडित जन कहते हैं. ॥ १ ॥

इकारान्ते पदे चैवोकारद्वयपदे परे ।
दीर्घं कम्पं विजानीयात्र्झग्घ्यूष्विति निदर्शनम् ॥२।

इकारान्त पद पूर्व में होवे तथा उकार द्वयवान् पद पर होवे तो दीर्घ कम्प कहाता है. ॥ २ ॥

उच्च और नीच स्वर के मध्यमें उच्चरित जो स्वर है वह साधारण कहाता है. उसीको शिक्षाको जानने वाले जन स्वार कहते हैं. ॥ ७ ॥

उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ ।
स्वरितः प्रभवाह्येते षड्ज मध्यमपंचमः ॥ ८ ॥

इस श्लोक का व्याख्यान प्रसंग से प्रथम हि किया है. ॥ ८ ॥

यत्र कखपरा ऊष्मा जिव्हामूल प्रयोजना ।
तामथाज्ञापयेन्मात्रां प्रकृत्यैव तु साकला ॥ ९ ॥

क अथवा ख पर जो उष्मा उस्को जिव्हामूल कहते हैं. उस्को मात्रा ऐसी संज्ञा है. इसी तरह प, फ, पर रहते जो विसर्ग सो उपध्मानीय संज्ञक है. इनके उदाहरण—" नमः कपर्दिनेच पावमानी" इत्यादि जानना. ॥ ९ ॥

जात्यःक्षप्रोभिनिहितस्तैरव्यंजन एवच ।
तिरोविरामः प्रश्लिष्टः पादवृत्तश्च सप्तमः ॥ १० ॥
स्वराणामहमेतेषां पृथग्वक्ष्यामि लक्षणम् ॥
उद्दिष्टानां यथान्यायमुदाहरणमेवच ॥ ११ ॥

दशमादि श्लोकमें कहे हुवे सात प्रकारके स्वरोंका लक्षण न्याययुक्त और उदाहरणोंके सह कहते हैं. ॥ ११ ॥

इति अष्टमी कण्डिका.

सयकारं सवं व्याप्यक्षारं स्वरितं भवेत् ।

नचोदात्तं पुरस्तस्य जात्यस्वारः सउच्यते ॥ १ ॥

व या र और यकार से युक्त जो स्वरित और जिसके परे उदात्त स्वर नहिं ऐसा जो अक्षर वह "जात्य" कहता हैं. ॥ १ ॥

इ उ वर्णौ यदोदात्तावापद्येते यवौ क्वचित् ।

अनुदात्तेऽत्यये नित्य विद्यात् "क्षैप्रस्य" लक्षणम् ॥ २ ॥

जिस कालमें इकार या उकार उदात्त अकारके संयोगसे यकार वकार भावको प्राप्त होते हैं तब व क्षैप्र कहाते हैं. उदाहरण श्रुष्टी अग्ने श्रुष्ट्यग्ने। वीडु अङ्गः वीड्वङ्गः। ॥ २ ॥

ए ओ आभ्यामुदात्ताभ्यां मकारो निहतश्च यः ।

अकारं यत्र लुम्पन्ति तमभिनिहतं विदुः ॥ ३ ॥

अभिनिहित उसे कहते हैं जो उदात्तसे उत्तर सवकार ए अथवा अ होगा अथवा संहितामें अकार, एकार, ओकार मे प्रविष्ट होता है जहां ऐसे स्थलको "अभिनिहत" कहते है। ३ ।

उदात्तपूर्वं यत्किंचिच्छंदसि स्वरितं भवेत् ।

एष सर्वबहुस्वारस्तरव्यञ्जन उच्यते ॥ ४ ॥

उदात्त है पूर्व जिसके ऐसे जो वेदमें स्वरित हैं ये सब बहुस्वार कहा। है तथा इसीको अव्यञ्जन कहते हैं. वि इतये वीतय इत्यादि । ४ ।

अयो दीर्घास्तुविज्ञेया येच सन्ध्यक्षरेषु वै ।
मन्यापथ्या न इन्द्राभ्यां शेषान्हस्वान्प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥

सन्ध्यक्षरमें जो मन्या, पथ्या, न इन्द्रा ये तीन उदाहरण हैं इनमें दीर्घ कम्प कहते हैं. ॥ ३ ॥

अनेकानामुदात्तानामुदात्तः प्रत्ययो यदि ।
शिवकम्पं विजानीयादुदात्तं प्रत्ययो यदि ॥ ४ ॥

दो या तीन उदात्तों के पर अनुदात्त होगा तो उसे शिव कम्प कहना. और वह आद्युदात्त भी कहाता है. उदा० त्र्यम्बक स्त्रिनेत्रः शिवः ॥ ४ ॥

यत्र द्विप्रभृतीनि स्युरुदात्तान्यक्षराणि तु ।
नीचं चोच्चं च परतस्तत्रोदात्तं विदुर्बुधाः ॥ ५ ॥

जहां कहि दो से लेकर अधिक उदात्त वर्ण होंगे और उस्से पर अनुदात्त अथवा उदात्त होगा तो वह उदात्त कहाता हैं. ।५।

न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो जायते क्वचित् ।
नच वर्गद्वितीयेषु न चतुर्थे कदाचन ॥ ६ ॥

रेफको और हकारको द्विर्भाव याने द्वित्व कहीं नहीं होता इसी तरह वर्ग द्वितीय जो ख छ ठ थ फ और वर्ग चतुर्थ घ झ ढ ध भ इनका केवलही प्रयोग होता है याने द्वित्वखादि वर्ण और द्वित्वघादि वर्ण उच्चारणमें कभी नहीं आते हैं. ॥ ६ ॥

नचतुर्थं तृतीयेन द्वितीयं प्रथमेनतु ।
आद्यमन्त्यंच मध्यंच तत्क्षरेणैवपीडयेत् ॥ ७ ॥

चतुर्थ और पंचम के साथ तृतीय वर्णोंका संयोग होता है, और प्रथम द्वितीय के साथ प्रथमकाहि संयोग उच्चरित होता है. ॥ ७ ॥

अनन्त्यश्च भवेत्पूर्वोन्त्यश्च परतो यदि ।
तत्रमध्ये यमस्तिष्ठेत् सवर्णः पूर्ववर्गयोः ॥ ८ ॥

अनन्त्य याने ककागादि पूर्व में होवे और अन्त्य (ङञण नम) इत्यादि पर होवे तो एसे संयोग के बीचमें जो अनन्त्य वर्णसदृश है उसे यम कहते हैं. उदाहरण अग्नआयाहि वीतय इत्यादि. ॥ ८ ॥

वर्णान्त्याच्छषसैः सार्द्धम् अन्तस्थैर्वापि संयुतान् ।
दृष्ट्वा यमा निवर्तन्ते आदेशिकमिवाध्वगाः ॥ ९ ॥

शषसयरलव के पूर्व में जब वर्ग के अन्त्य व्यञ्जन होते हैं तब वहांपर यम की उत्पत्ति हो नही सक्ती जैसी प्रवासी जन की चौर देखकर प्रवृत्ति नही होती. ॥ ९ ॥

तृतीयश्च चतुर्थश्च चतुर्थादि परं पदं ।
द्वौतृतीयौ हकारश्च हकारादि परं पदं ॥ १० ॥

सांहितामें वर्ग के तृतीय अथवा चतुर्थ वर्ण जब संयुक्त होते हैं तब पदकालमें चतुर्थादि उत्तरपद होता है, " बाग्घ हह्व हह्व " इति ॥ १० ॥

अनुस्वारोपधमूलानां न क्वचित् क्रमते परम् ।
रहपूर्वसंयुतेचाप्युत्तरं क्रमतेक्षरम् ॥ ११ ॥

अनुस्वार, उपध्मानीय, जिव्हामूलीय इन को द्वित्व कदापि नही होता है. " नमः पथेच नमः कपर्दिनेच " यह उदाहरण है. और जो रेफ से संयुक्त हो अथवा हकार से संयुक्त हो तो द्वित्व होता है. अर्क्को देवानां ब्रह्मा इत्युदाहरणम् ॥ ११ ॥

संयोगे स्वरितंयत्रचोद्धातः पतने यथा ।
पूर्वाङ्गमादितः कृत्वा पराङ्गादौ निवेशयेत् ॥ १२ ॥

संयोग पर रहते जो स्वरित है उसमें अनुदात्तसे उदात्तकी तरफ गमन करते समय अथवा उदात्तसे अनुदात्तकी ओर गमन करते समय स्वरितका परांग प्रथम निवेश करना ॥ १२ ॥

संयोगे यत्र दृश्येत व्यञ्जनं विरते पदे ।
पूर्वाङ्गं तद्विजानीयाद्येनारम्भस्तत्पराङ्गकम् ॥ १३ ॥

जहा संयोग विभक्त होता है, और व्यंजन उत्तर पदसे असंलग्न रहता है. तब वह व्यंजन पूर्व पदका अंग समझा जाता है, और जिस व्यंजनसे संयोग पृथक् होता है ऐसा व्यंजन परपदका अंग कहाता है भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् इत्यादि ॥ १३ ॥

संयोगात्तु परं स्वर्यं परं संयोगनायकम् ।
संयुक्तस्य तु वर्णस्य स्वरितं पूर्वमक्षरम् ॥ १४ ॥

संयोगके पर भागका स्वर युक्त करना क्यौं कि व्यंजनके उच्चारणका विश्रांति प्रधान स्वर कहाता है. याने विना स्वरोच्चार के व्यंजनोच्चारको विश्रांति नही मिलती ॥ १४ ॥

अनुस्वारः पदान्तश्च कपजः प्रत्यये स्वके ।
स्वरभक्तिस्तथा रेफः सर्वे पूर्वांगमुच्यते ॥ १५ ॥

पदान्तमें स्थित अनुस्वार पदान्त रेफ स्वर भाग ये सब पूर्वाङ्ग कहाते हैं. ॥ १५ ॥

पादादौच पदादौच संयोगावग्रहेषुच ।
यः शब्द इति विज्ञेयो योऽन्यः स य इति स्मृतः॥१६॥

पाद, पद, संयोग, तथा अवग्रह (पदच्छेद) में आदिमें स्थित जो यकार उसको द्वित्व कहना अन्य स्थलोंमें केवल का प्रयोग करना. " त्वं यविष्ठेति " पदादौ " पन्यं पन्यं " संयोगे अन्यः अनूप इति अवग्रहहैं ॥ १६ ॥

पादादावप्यविच्छेदे संयोगान्तेच तिष्ठताम् ।
वर्जयित्वा महर्षीणामयादेशः प्रदृश्यते ॥ १७ ॥

अविच्छिन्न पदको तथा संयोगान्त पदको छोडकर अन्य स्थलमें अया देश होता है. ॥ १७ ॥

स्वसंयुक्तो गुरुर्ज्ञेयः स्वानुस्वाराग्रिमः स्फुटः ।
अणुरूपोऽग्रिगोवापि युगलादिरविस्फुटः ॥ १८ ॥

इति द्वितीयस्य द्वितीय कण्डिका.

यदुदात्तमुदात्तं तद्यत्स्वरितं तत्पदे भवति नीचम् ।
यन्नीचं नीचमेव तद्यत्प्रचयस्थं तदपि नीचम् ॥ १ ॥

उदात्त स्वर संहिता कालमें अनुदात्त होता है. और जो स्व-रित है वह उदात्तपर रहते नीच याने अनुदात्त होता है. और अनुदात्तपर रहते स्वरितकाहि उच्चारण होता है. जैसे---अग्न, आयाहि, वीतये, ये उदाहरण हैं. ॥ १ ॥

अयमग्निः सुतो मित्रमिदं वयमयावहाः
प्रियं दूतं घृतं त्रितमाभि सद्भ्य नीत्रतः । २ ॥

इन सब पदोंका आरम्भ अनुदात्तसे है. इनके वेदमन्त्रोक्त उदाहरण नीचे देते हैं.----अग्नं वःसुनो, गत्रा, अयते अग्नि वः सः सुतः मित्रं, हुब इदंब्रमो, वयंवाअग्नाते वहाम्, प्रियं, मित्रंदूतं वः, घृतं, दुहुते, त्रितमे, आभिप्रियाणि. ॥ २ ॥

अर्केष्वेव सुतेष्वेव यज्ञेषुकलशेषुच ।
शेतेषु सपवित्रेषु नीचादुच्चार्यते श्रुतिः । ३ ॥

उदाहरण---अर्क, अर्चत, इत्यादि अर्क, सुतेषुवः, सुतेसनोति सुतादि, यज्ञायतस्याः, यज्ञाः, कलशं, कलशेषु इत्यादि कलशादि, शतंहिनःशतमित्यादि शतेनाशतः, पवित्रे पवित्रमन्वी इत्यादयः पवित्राः, इत्यादिकोंमें अनुदात्तसे उपक्रम जानना . ॥ ३ ॥

हरि वरुण वरेण्येषु पुरुषेषु स्वरिति रेफः ।
विश्वानरोनकारेषु सकारस्वारिनानरः ॥ ४ ॥

हरि हिन्वति वरुणोमित्रः वरेण्यंधारा सुतस्य, सहस्रशीर्षा पुरुषः इन लक्ष्यांमें रेफकोहि स्वरितत्व जानना, विश्वानरस्येति शब्दमें नकारको और शेषनर शब्दोंमें नकार अस्वरित जानना. ॥ ४ ॥

द्वौ वरुणौवस्वरित उदुत्तमं त्वं वरुण ।
धाकारेचोरुधारायामुरुधारेव दोहने । ५ ।

"उदुत्तमं वरुणेति" इस उदाहरणमें वरुणके वकारको स्वरितत्व जानना. ॥ ५ ॥

मात्रिकंवा द्विमात्रंवा स्वर्यते यदिहाक्षरम् ।
तस्यादितोर्द्धमात्रावै शेषंतु परतो भवेत् । ६ ।

प्रथममें पूर्वांगकी जो व्याख्या किई सो वर्णापेक्ष्यकी अब स्वरकी अपेक्षा पूर्वांग परांगको कहते हैं. और ऱ्हस्व दीर्घ स्वरितकी आधि मात्रा उदात्त और अनुदात्त जानना. इसमें प्रमाण—पाणिनी ऋषि प्रणीत "तस्यादित उदात्तमर्द्धह्रस्वमिति" यह सूत्र है. ॥ ६ ॥

अदीर्घं दीर्घवत्कुर्यात् द्विस्वरं यत्रयुज्यते ।
कम्पात् स्वारिणामि गीतं ऱ्हस्व कर्षणमेवच ॥ ७ ॥

जहां कम्प होवे वहां ह्रस्वका उच्चारण दीर्घके सदृश करना. उदाहरण—"पात्युतउदूर्ने" ॥ ७ ॥

निमेष काला मात्रास्याद्विद्युत्कालेतिचापरे ।
ऋक्स्वरा तुल्ययोगाद्वा मतिःस्यात्सोमशर्मणः ॥ ८ ॥

आंखको बंद करनेमें जो टाईम लगता हैं उसे मात्रा कहते हैं. कोई २ विद्युत्के स्फुरणकालको भी मात्रा कहते हैं. सोमशर्मा आचार्य तो ऋकार छकार इत्यादिकोके उच्चारण कालको मात्रा कहते हैं. ॥ ८ ॥

समासेवग्रहं कुर्यात् पदंचात्रानु संहितम् ।
यतोक्षरादिकरणं पदान्तं तस्य तांविदुः ॥ ९ ॥

समस्त पद विशिष्टार्थका बोधक है यदि उसका विग्रह होगा तो वहा संहिता नही रहती है. उदाहरण—हव्यदातय इति हव्यदातये, विश्ववेदसमिति विश्ववेदसमित्यादि ॥ ९ ॥

सर्वत्र पुत्रमित्रसखि शब्दा अविशतक्रतोरग्राह्याः ।
आदित्य विप्रजातवेदाश्च सत्पतिगोपतिवृत्रहा समुद्रश्च ॥ १० ॥

इन शब्दोका विग्रह किया जाता है.

स्वर्युवोदेवयुवश्चारतिं देवतातये ।
चिकितिश्चुकुधंचैव नाव गृह्णन्ति पण्डिताः ॥ १० ॥

स्वर्युवो देवयुवश्च ये शब्दकप्रत्ययान्त हैं किन्तु समस्त नही हैं. इसतरह अरतिमें नरति अरति ऐसा विग्रह नही है किन्तु यह अकारादि धातु हैं. देवतातये यह शब्दताति प्रत्ययान्त है. चिकिति औरचुकुधयेकित् और क्रुध धातुसे व्दित्व करके निष्पन्न हुए हैं. ॥ १० ॥

द्वितीयस्य तृतीय कण्डिका.

विद्वत्तयश्चतस्रावविज्ञेया इति मेपतम् ।
अक्षराणां नियोगेन तासां नामानिमेश्रुणु ॥ १ ॥

ह्रस्वादिर्वत्सानु स्तावत्सानु सारिणोचाग्रे ।
पाकवत्युभयोर्ह्रस्वा दीर्घरुद्धापिपीलिका ॥ २ ॥

श्रुति आके विवरण वह चार प्रकारका है. और वह अक्षरोंके उपाधीसे होता है. वे चार प्रकार कहते हैं. जिस्के पूर्वपदका आद्याक्षर ह्रस्व होवे और उत्तरपदका आद्यअक्षर दीर्घ होवे वह "वत्साक" कहाता है. उदाहरण–अग्नआयाहि वीतयइति आदिमें दीर्घ उत्तरमें ह्रस्व है जिस्को उसको "वत्सानुसारिणी" कहते हैं. उदाहरण—प्रेष्टंवोअतिथिमित्यादि दोनो पदके आदि और अन्त ह्रस्व जिस्के उसे "पाकवती" संज्ञा है. "वृतुह" अग्नस्त्रे तरागिर इति यथाउभयत्रदीर्घाभ्यांविरुद्धा "पिपीलिका" आले पुर्वोत्तर पदके आद्याक्षर दीर्घ है जिस्के उसको पिपीलिका संज्ञा है. ॥ १ ॥ ॥ २ ॥

चतसृणां विद्वत्तीनामन्तरं मात्रिकं भवेत् ।
अर्द्धमात्रिकमन्येषामन्येषामणुमात्रिकम् ॥ ३ ॥

चारों प्रकारके विवरणोंमें जो अंतर है वह किसी आचार्यके मतसे एकमात्रिक है किसीके मतसे अर्द्धमात्रिक तथा किसीके मतसे अणुमात्रिक है ये प्रमाण तत् शाखाके उपाधियोंसे माना गया है. ॥ ३ ॥

आपद्यते मकारो रेफोष्मसुप्रत्ययेष्वनुस्वारम् ।
यलवेषु पर सवर्ण स्पर्शेषु चोत्तमापात्तिम् ॥ ४ ॥

रेफ और उष्मादि प्रत्यय पर रहते मकारको अनुस्वार होता है उदहरण--मावांरातिः तं सख्ययः उद्वंशमिव इसी तरह य व ल पर रहते मकारको परसवर्ण होता है यविष्ट तँ ल्लोकं तँव्व इत्यादौ पर सवर्णता, समहेम विधदद्राण इत्यादिमें स्पर्श वर्ण पर रहते स्पर्श 'वर्ण' सदृश उत्तम संज्ञक वर्ण होते है. ॥ ४ ॥

नकारान्ते पदे पूर्वस्वोरच परतः स्थिते ॥
आकारं रक्तमित्याहुर्नकारेण तु रज्यते ॥५॥

स्वर पर रहते पदान्त नकारसे स्वर अनुरक्त याने मिलजाता है. उदाहरण----वरामहन्इति. नकारान्त पदमें अर्द्धमात्रिक नकारमे अर्द्धमात्रा अकारादिककी अनुरक्त होती है ॥ ५ ॥

नकारान्ते पदे पूर्वे व्यञ्जनैश्च यवो हिषु ।
अर्द्ध मात्रातु पूर्वस्य रज्यते त्वणु मात्रया ॥६॥

नकारांत पदका अर्धमात्रिक यवयुक्त हकारके साथ अनुराग होता. है, उदाहरण---ऋच्छन्ताहन्युश्मसीत्यादि. ॥ ६ ॥

नकारःस्वर संयुक्तश्चतुर्युक्तो विधीयते ॥
रेफोरङ्गश्च लोपश्चानुस्वारोऽपिवा क्वचित् ॥ ७ ॥

पदांत नकारके चार रूप होते है जो उससे पदपर होवे तो १ भवाँश्चिनोति. इसमें नकारका रेफ विसर्ग और पूर्वको अनुनासिक होता है. महान् इन्द्र, दधन्वान् य इत्यादि. नकारका लोप पूर्वको अनुनासिक तथा पक्षमें अनुस्वारभी होता है. ॥ ७ ॥

हृदयादुत्थिततरङ्गः कांस्येन समानिः स्वरः ॥
मृदुश्चैव द्विमात्रश्च दधन्वान् इति दर्शनम् ॥ ८ ॥

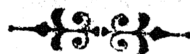
कांस्येन, मृदुः और द्विमात्र, दधन्वान् इत्यादि उदाहरण जानना. ॥ ८ ॥

यथा सौराष्ट्रिका नारी अरान् इत्यभि भाषते।
एवं रङ्गः प्रयोक्तव्यो नारदस्य मतं यथा ॥ ९ ॥

वर्णके उच्चार जैसे सौराष्ट्र यान गुर्जर देशकी स्त्री अरान् इस शब्दका उच्चार मधुर स्वरसे करती है इसी तरह मधुर और व्यक्त उच्चार करना ॥ ९ ॥



॥ इति द्वितीयस्य चतुर्थी कंडिका ॥



स्वरा गडदबाश्चैव ङञनमाः सहोष्माभिः ॥
चतुर्णां पदजातीनां पदन्ता दशकीर्त्तिताः ॥ १ ॥

अकरादि स्वर, गडदब, ङञनम, षस ये चार प्रकारके जाती के दश प्रकारके पदांत हैं. शब्दोंमें चार प्रकार, नाम आख्यात उपसर्ग और निपात. उदाहरण—अग्ने आयाहि, इम इन्द्रेत्यादि, वाग इहहहह विभ्राड बृहत् तदिन्द्र, त्रिष्टुबिह य इति त्वं कवित्व जनानां, तन्नो मित्रः त्वंमरासि निष्पपीमुत्रः स्वरिति गादि ये दश हैं. ॥ १ ॥

स्वर उच्चः स्वरोनीचः स्वरः स्वरित एवच ।
व्यञ्जनान्यनु वर्तंते यत्रतिष्ठति सस्वरः ॥ २ ॥

उच्च स्वर नीच स्वर स्वरित ये तीन प्रकार स्वरोंमें है ॥ २ ॥

स्वरप्रधानं त्रैस्वर्यमाचार्याः प्रतिजानते ॥
मणिवत् व्यञ्जनं विद्यात्सूत्रवच्चस्वरं विदुः ॥ ३ ॥

उदात्त अनुदात्त और स्वरित ये प्रधान स्वर है. मणितुल्य व्यञ्जन है, और सूत्र तुल्य स्वर हैं. ॥ ३ ॥

दुर्बलस्य यथा राष्ट्रं हरते बलवान्नृपः ॥
दुर्बलं व्यञ्जनं तद्वत् हरते बलवान् स्वरः ॥ ४ ॥

जैसे दुर्बलका राज्य बलवान् नृप हरण कर लेता है इसीतरह दुर्बल व्यञ्जनको बलवान् स्वर हरण करता है.॥ ४ ॥

ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एवच॥
जिव्हामूलमुपध्माच गतिरष्टविधोष्मणः॥ ५॥

उष्मावर्णके सन्धीके आठ प्रकार हैं. १ ओभाव दूसरा विवृत्तियाने असन्धिः और श, ष, स, रेफ, तथा जिव्हामूलीय और उपध्मानीय,॥ ५॥

स्वरप्रत्ययाविवृत्तिःसहितायां तुया भवेत्॥
विसर्गस्तत्रमन्तव्यस्तालव्यो वात्र जायते॥ ६॥

संहितामें स्वरका पृथग् भाव अथवा विसर्ग होता है उसको तालव्य शकारभी हो जाता है.॥ ६॥

संध्यक्षरोपधेसंध्यौ प्रासलुप्तौ यवौयदि।
व्यञ्जनाख्या विवृतिस्तु स्वराख्या प्रकृतिसंहिता॥ ७॥

यदि यकार अथवा वकार सन्ध्यक्षर उपधामें होते लुप्त होजाये तो वहां स्वरोंका प्रथग् भाव होता है. ॥ ७॥

उष्मान्तं विरतंवत्र सन्धौ वो भवतेचयत्।
विवृत्तिर्याभवेत्त्र तांस्वराख्यान्तां विनिर्दिशेत्॥ ८॥

जिस सन्धीमें उष्मावर्ण अन्तमें है. अथवा जहां पदोंका नित्य पार्थक्य है वह स्वराख्य संन्धी कहाती है. ॥ ८॥

यद्योभावप्रसन्धानमुकारादि परं पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥ ९ ॥

पदान्त विसर्गका हशादि पद पर रहते ओभाव होता है. अजादि पद पर रहते विसर्ग लुप्त हो जाता है. श ष स पर रहते विसर्ग व्यक्त हो जाता है. उदाहरण—भर्गो देवस्य, कहह ऋषिभिः सहि देवस्य ॥ ९ ॥

प्रथमा उत्तमाश्चैव पदान्तेषु यदि स्थिताः ।
द्वितीय स्थानमापन्नाःशषसौ प्रत्ययो यदि ॥ १० ॥

शषसादि प्रत्ययपर रहते कचटतप इनको द्वितीय (खछठथफ) होते हैं और पदान्त मको अनुस्वार होता है ॥ १० ॥

प्रथमानूष्मसंयुक्तान् द्वितीयानिवदर्शयेत् ।
नचनान्प्रतिजानीय यथा मत्स्यःक्षुरोप्सरा इति ॥ ११ ॥

शषसह संयुक्त जो वर्गके प्रथम ककारादि वर्ण वर्गके द्वितीय वर्ण सदृश उच्चारित होते है. जैसे मत्स्यः क्षुरोऽप्सरइति ॥ ११ ॥

द्वितीयस्य पञ्चमी काण्डिका.

छन्दोयानंच वृत्तंच पादस्थानं तिकारणम् ।
ऋचःस्वच्छन्दवृत्तास्तु पादास्त्वक्षरमानशः ॥ १ ॥

अब यहांसे आगे गायत्र्यादि छंदोका स्वरूप वर्णन करते हैं

गायत्र्यादि छंदोंका स्वरूप तीन कारणोंसे निर्णीत होता है. १ छन्दोमान, २ वृत्त, और ३ पादस्थान. ये तीन कारण हैं ॥ १ ॥

ऋवर्णं स्वर भक्तिंच छन्दोमानेन निर्दिशेत् ।
प्रयत्नेन सहारेफं मिमीतस्वर भक्तिषु ॥ २ ॥

स्वर भक्तियुक्त ऋकार पर रहते रेफका उर्ध्व गमन होता है. और जहां स्वर भक्ति पर न होवे वहां अरेफ याने अपृथग् भूत रेफ जानना. ॥ २ ॥

ऋ वर्णेतु पृथग्रेफः प्रत्ययस्तु पृथग्भवेत् ।
विद्यात्लघुमृकारंतु यदि तूष्माण संयुतः ॥ ३ ॥

एक ऋवर्ण में ही रेफ द्वयकी एक मात्रा प्रतीत होती है. ऐसे स्थलमें रेफ द्वयकी एक मात्रा स्वर रूप कहाती है और वहां पर लघु संज्ञक ऋकार बोला जाता है और यदि ऋकार उष्मासंयुक्त हो जावे तो लघु स्वर बोला जाता है ॥ ३ ॥

ऊष्मणैव हिसंयुक्त ऋकारोयत्र पठ्यते ।
गुरुवर्णः सविज्ञेयसतृचं चात्रानु दर्शनम् ॥ ४ ॥

ऋकार उष्मादि याने शकारादि वर्णोंसे युक्त होवे तो गुरु होता है. ॥ ४ ॥

ऋषभंच गृहीतंच बृहस्पतिं पृथिव्यामच ।
निर्ऋतिंच पंचमा त्यत्र ऋकारोनात्र संशयः ॥ ५ ॥

ऋषभ, गृहीत बृहस्पति, पृथ्वी, और निर्ऋति इन पांचो शब्दोंमें विकृत ऋकार जानना. ॥ ५ ॥

शषस हरादौ रेफःस्वरभक्तिर्जायते द्विपदेसन्धौ ।
इउ वर्णाभ्यां हीना क्वचिदेक पदाक्रमवियुक्ता ॥ ६ ॥

रेफ पूर्व और इउ वर्णपर नही जिस्के ऐसे एकपदस्थ श ष स ह पर रहते "एकपदा" स्वरभक्ति निष्पन्न होती है. उदाहरण—अर्षसी, अर्षभी इत्यादि. ॥ ६॥

स्वरभक्तिर्द्विविधा ऋकारो रेफ एवच ।
स्वरादौ व्यञ्जनादौच विहिताक्षरचिंतकः ॥ ७ ॥

स्वरभक्ति दो जातकी है. एक स्वरसे उत्पन्न होती है. उसे "स्वरोदा" कहते हैं. और द्वितीय व्यंजनोंसे उत्पन्न होती है. उसे "व्यंजनोदा" कहते है. ॥ ७ ॥

शषसेषु स्वरोदायां हकारे व्यंजनोदयाम् ।
शषसेषु विवृत्तांतु हकारे संवृतां विदु ॥ ८ ॥

शषस पर रहते स्वरोदा विवृत्ता स्वरभक्ति कहाती है. उदाहरण—अर्षसी और हकारपर रहते व्यंजनोदा संवृत्ता कहाती है. ॥ ८ ॥

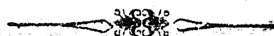
स्वरभक्तिंप्रयुञ्जानस्त्रीन्दोषान् परिवर्जयेत् ।
इकारं चाप्युकारंच ग्रस्तदोषं तथैवच ॥ ९ ॥

स्वरभक्तिको प्रयोग करनेवालोंने इकार उकारसे ग्रस्तशषसह का ख्याल जरूर करना. ॥ ९ ॥

संयोगपरं छपरं विसर्जनीयं हि मात्रिकं चैव ।
अवसानिकं च न लघुसानुस्वारं घुडतं च ॥ १० ॥

संयोगपरक स्वरको छकार पर स्वरको तथा विसर्गान्त तथा अनुस्वारान्त स्वरको द्विमात्र जानना. ॥ १० ॥

इति षष्ठी काण्डिका.



पथ्यापादःप्रथमो द्वादशमात्रस्तथा तृतीयोऽपि ।
अष्टादशो द्वितीयःसमापनःपंचदशमात्रः ॥ १ ॥

जिस्का पूर्वपाद सप्त वरयुक्त द्वादश (बार) मात्रिक होवे तथा तृतीयपाद ग्यारह अक्षरवाला और अठरा मात्रावाला होवे और चतुर्थपाद पंचदश [१५] मात्रावाला होवे उसे "पथ्या" कहते हैं. ॥ १ ॥

पथ्यालक्षणमुक्तं यात्वन्या सास्मृताविपुला ॥
अक्षराणां लघु ह्रस्वमसंयोगपरं यदि ॥ २ ॥

परन्तु जिस्का चतुर्थ पाद दश अक्षरवाला और द्वादश मात्रिक होवे तो उसे "विपुला" यह संज्ञा है.

यदि संयोगपर न होवे तो लघु ह्रस्व कहाता है और संयोग

तत्संयोगोत्तरंविद्यात् गुरुदीर्घाक्षराणितु ॥
विवृत्तिर्यत्रदृश्येत स्वारस्यैवाग्रतःस्थितम् ॥ ३ ॥

विवृत्ति परक जो स्वर है उसे गुरु संज्ञा है वह क्षैप्र या लघु नहीं कहलाता ॥ ३ ॥

गुरुःस्वारःसविज्ञेयःक्षैप्रस्तत्र न विद्यते ॥
अष्टप्रकारंविज्ञेयं पादानां स्वरलक्षणम् ॥ ४ ॥

पादके स्वरोंका लक्षण आठ प्रकारका है. ॥ ४ ॥

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।
मध्योदात्तं स्वरितं द्विरुदात्तमित्येता अष्टौपद संज्ञाः ॥ ५ ॥

वे प्रकार अन्तोदात्तादि समझना ॥ ५ ॥

अग्निःसोमःप्रवोवीर्यं हविषा स्वर्वनस्पतिः ।
अन्तर्मध्यमयोर्नाभ्युदमनुदंनिपाते ॥
आद्यात् स्वरितमुपसर्गं द्विर्नीचमाख्यात इति ॥ ६ ॥

उदाहरण—अग्निर्वृत्राणीति इसमे अग्नि अन्तोदात्त है. सोमः पवते इति इसमे सोम आद्युदात्त है. प्रवोयक्षमिति इसमे प्र उदात्त और व अनुदात्त. बलंन्युब्जंवीर्यमिति इसमे वीर्य नीच स्वरित हविषा विधेमेति हविषा मध्योदात्तं भूर्भुवः स्वरिति स्वः स्वरित जानना वनस्पति शब्दमें तकार और स्पकार दोनो उदात्त जानना. ॥ ६ ॥

स्वरितात्पराणि यानिस्युर्द्दीर्यान्यक्षराणितु ।
सर्वाणिप्रचयस्थान्युपादात्तं निहन्यते ॥ ७ ॥

स्वरितसे पर जो स्वर हैं वे निहित याने अनुदात्त हो जाते है उदाहरण निहोता सत्सीति ॥ ७॥

प्रचयो यत्रदृश्येत तत्रहन्यात् स्वरंबुधः ।
स्वरितःकेवलोयत्र मृदुंतत्र निपातयेत् ॥ ८ ॥

प्रचय जहां होता है वहां निघात हो जाता है और केवल स्वरित जहां रहता है वहां मृदु संज्ञक स्वर होता है ॥ ८॥

पंचाविधमाचार्यकंनाम मुखन्यासःकरणम् प्रातिज्ञोच्चारणा।
अत्रोच्यतेश्रेयःखल्वसप्रातिज्ञोनोच्चारणा ॥ ९ ॥

आचार्य परंपरासे अंगुल्यग्रादिमें जो स्वरोंका निर्देश है, उस्में करण शिक्षा है यह स्वर निवेश गुरुपरम्परासे जान लेना ॥ ९॥

यस्यकस्याचिद्वर्णस्य करणं नोपलभ्यते ।
प्रतिज्ञा तत्र बोढव्या करणं हि तदात्मकम् ॥ १० ॥

जब किसी किसी वर्णका करण किसी कारणसे अज्ञात हो, तब वहांपर आचार्य परम्परासे पठन पाठनमें जो रीति अवधारित हो उसीसे निश्चय करलेना. ॥ १० ॥

तुम्बुरु नारदवशिष्ट विश्वावस्वादयश्च गन्धर्वाः
सामसु निभृतं करणं स्वरसौक्ष्म्यात्तेऽपिहिनकुर्युः ॥ ११ ॥

तुम्बुरुआदि गन्धर्व श्रेष्ठ भी इन सूक्ष्म स्वरोंके लक्षण करने में असमर्थ हुए ॥ ११ ॥

द्वितीयस्य सप्तमी काण्डिका.

कौक्षेयाग्निं सदा रक्षेदाश्नीयादशनंहितम् ।
जीर्णाहारःप्रबुद्धःसन्नुपासि ब्रम्हाचिन्तयेत् ॥ १ ॥

इस गांधर्व वेदको पठन करनेवाले जनने जठराग्नीको हमेश प्रदीप्त रखना चाहिये और जीर्णाहार होकर उषःकालमें उठकर परब्रह्मका चिन्तन करना ॥ १ ॥

शरद्विषुवतातीतादुषस्युत्थानमिष्यते ।
यावद्वासंतिकी रात्रिर्मध्यमापर्युपास्थिता ॥ २ ॥

शरद् कालसे बसन्त ऋतु तक जो रात्री है सो बडी होनेके कारण उन रात्रिओंमें सामादि गान करनेवाले लोगोंनें २५ घटिका रात्रके अनन्तर शयनोत्थित होकर शौचादि आवश्यक क्रियोंसे निवृत होकर गानको आरम्भ करना चाहिये ॥ २ ॥

आम्रपालाशबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः ।
वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेत् दन्तधावनम् ॥ ३ ॥

आम्र, पलाश, बिल्व, अपामार्ग, शिरीष, ॥ ४ ॥

खेर, कदम्ब, करवीर, और करंज इन वृक्षों के काष्टसे दन्त

धावन करना क्योंकि दूध वाले तथा कंटक वाले वृक्षोंके अवयव यशको देनेवाले और पुण्य बढ़ाने वाले होते है ॥ ४ ॥

तेनास्य करणं सौक्ष्म्यं माधुर्यं चोपजायते ।
वर्णांश्च कुरुते सम्यक् प्राचीनौदव्रजीर्यथा ॥ ५ ॥

इन लकडियोंसे दन्त धावन करने से स्वर में माधुर्य सूक्ष्मता और वर्णोच्चार स्पष्टतासे होता है ऐसा प्राचीन औदव्रजि नामक आचार्यका मत है ॥ ५ ॥

त्रिफलां लवणाख्येन भक्षयेच्छिश्यकः सदा ।
अग्निमेधाजनन्येषा स्वरवर्णकरी तथा ॥ ६ ॥

त्रिफलाका चूर्ण लवण संयुक्त कर भोजन के अनन्तर अथवा सायंकालमें पठन करनेवालोंने भक्षण करना चाहिये कारण त्रिफला चूर्ण जठराग्नि प्रदीप्त करता है और इसीसे बुद्धि भी तीव्र होती है ॥ ६ ॥

कृत्वाचावश्यकान् धर्मान् जठरं पर्युपास्यच ।
पीत्वा मधुघृतं चैव शुचिर्भूत्वा ततोवदेत ॥ ७ ॥

आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होकर (जठरं पर्युपास्य) याने शौचादिकोंसे निवृत्त होकर स्नानादि करके घृतयुक्त मधुको पान करके सामादिको का गायन आरम्भ करे ॥ ७ ॥

मन्द्रेणोपक्रमेत्पूर्वं सर्वं शाखा स्वयं विधिः ।
सप्तमन्त्राननतिक्रम्य यथेष्टंवाचमुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

मंद्र स्वर से मंत्रोंका उच्चारण करे निदान सात मंत्रोंको मंद्र स्वर में जरूर गाना चाहीए. पश्चात् यथेष्ट स्वर में गावे.

लेकिन स्वर इतना जोरसे लगावे कि जिससे प्राण व्याकुल न होवे ॥ ८ ॥

प्राणानामुपरोधेन वैस्वर्यंचोपजायते ।
स्वरव्यञ्जनमाधुर्यं लुप्यते नात्रसंशयः ॥ ९ ॥

क्योंकि प्राणका उपरोध होनेसे विस्वर होकर स्वर और वर्णोंका माधुर्य लुप्त होता है ॥ ९ ॥

कुतीर्थादागतंदग्धमपवर्णैश्च भक्षितम् ॥
नतस्यपरिमोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषान् ॥ १० ॥

जैसे सर्पके मुखसे निकलाहुवा अमृत रूपी दुग्ध विष हो जाता है इसी तरह अपवित्र देशस्थित आचार्यसे पठित मंत्र भी निष्फल होते है ॥ १० ॥

सुतीर्थादागतं व्यग्धं स्वाम्नातं सुप्रतिष्ठितम् ।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्मराजते ॥ ११ ॥

पवित्र स्थल में स्थित जो पवित्र आचरण वाले आचार्य उन से पढे हुवे सुस्वरयुक्त मन्त्रादि ब्रह्म पदको प्राप्त करते है अप्रतिष्ठित आचार्योंसे पठित सुस्वरभी मन्त्र फल नहीं देते ॥ ११ ॥

नकरालो नलम्बोष्ठो नच सर्वानुनासिकः ।
गद्गदो बद्धजिह्वाश्च प्रयोगान्वक्तुमर्हति ॥ १२ ॥

नासिका, नेत्र, कर्ण, ओष्ट और दन्त जिनके सुन्दर है ऐसे पुरुष पठन पाठन में योग्य है. और सर्वानुनासिक याने नासिक प्राधान्य करके स्वरको निकालने वाले और बद्ध जिव्हा याने जिसकि जिव्हा स्वर निकालते या बोलते समय रुक जाती है ऐसे मनुष्य प्रयोग करने में अयोग्य जानने ॥ १२ ॥

एकचित्तो निरुभ्रांतस्तान्तगानविवर्जितः ।
स तु वर्णान् प्रयुञ्जीत दंतोष्ठं यस्य शोभनम् ॥ १३ ॥

विद्या प्राप्त करनेवालेने एकचित्त होकर उस्का अभ्यास करना चाहिये और गर्वरहित होना चाहिए. तान्तगान याने अति विलम्बित शब्दोच्चार न करना. इसलिए गान विद्याके सिखनेवाले जनके दांत ओष्ठ सुंदर होने चाहिए. जिस्से वर्णोच्चार शुद्ध होंगे. ॥ १३ ॥

पंचविद्या नगृह्णंति श्चंडास्तब्धाश्चये नराः ।
अलसाश्चानरोगाश्च एषांच विस्मृतं मनः ॥ १४ ॥

नीचे लिखेहुए पांच प्रकारके दुर्गुण युक्त पुरुष विद्या ग्रहण करनेमें असमर्थ जानने. चण्ड याने अहंकारी. स्तब्ध याने कहीहुई वार्त्ताको न समझनेवाले. आलसी, रोगग्रस्त और चंचल मनवाले. ॥ १४ ॥

शनैर्विद्या शनैरर्थानारोहेत्पर्वतं शनैः ।
शनैरध्वसुवर्तेत योजनानि परंव्रजेत् ॥ १५ ॥

विद्याका पठन द्रव्यका संग्रह पर्वतका आरोहण. और मार्ग क्रमण शनैःशनैः याने धीरे धीरे करना चाहिए. उस्से परिश्रम कम होकर उस्के पार होजाता है. ॥ १५ ॥

योजनानां सहस्राणि शनैर्याति पिपीलिका ।
अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥ १६ ॥

इस्में प्रमाण——धीरे धीर चलनेवाली चिंटी हाजारो योजने जाती है. और एक पादभी न चलनेवाला वैनतेय याने गरुड पक्षी तो किंचिद्भी दूर गमन करनहीं सक्ता. ॥ १६ ॥

न हि पार्ष्णिहता वाणी प्रयोगान् वक्तुमर्हती ।
बधिरस्येव तल्पस्था विदग्धा वामलोचना ॥ १७ ॥

सर्वथा पुरुषोंने व्यक्त और सुरस गान करना चाहिए. क्यौं कि "पार्ष्णिहता" याने प्रथम क्रुष्टस्वरसे गान तथा पश्चात् विच्छिन्न याने टूटेहुए स्वरसे गान श्रोत्राओंको उद्वेग जनक होगा. अन्यथा रति कला चतुर स्त्रीका बधिर पुरुषके साथ विषय व्यापारवत श्रोतृगणोंकी चित्तवृत्ती भिन्न होगी. ॥ १७ ॥

उपांशु त्वरितं चैव योऽधीते वित्रसन्निच ।
अपि रूपसहस्रेषु सन्देहेष्वेव वर्तते ॥ १८ ॥

नीच स्वरोंका गान तथा शीघ्रता पूर्वक गान श्रोतृ चित्तक समाधान करने वाला न होगा. और ऐसे गाने वाले जनक

शब्दोंच्यामे सन्देह बनाहि रहेगा. ॥ १८ ॥

पुस्तकं प्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसान्निधौ ।
राजते न सभामध्ये जारगर्भा इव स्त्रियः ॥ १९ ॥

बिना गुरुके केवल पुस्तकों परसे अध्ययन करने वाले जन की विद्या, जार स्त्रीके उत्पन्न पुरुष के सदृश सभाके मध्य में शोभा को नहि देगी ॥ १९ ॥

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम् ।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु ॥ २० ॥

नित्य व्यय करने से अंजन के पर्वत का भी क्षय होता है. और नित्य शनैः शनैः व्यापत जो पिपीलिका (चिटी) वलमीकका संचय करती है. इसी तरह नित्य थोडा थोडा अभ्यास करने वाला जन विद्यारूप सागर के अंतमें सहज में जाता है. ॥ २० ॥

यत्कीटैः पांशुभिः श्लक्ष्णैर्वल्मीकः क्रियते महान् ।
न तत्र बलसामर्थ्यमुद्योगस्तत्र कारणम् ॥ २१ ॥

जैसे छोटे छोटे कृमी [कीडे] मृत्तिकासे बडा भारी गृह निर्माण करते है इसी रीती से विद्याभ्यासी जनोंनें विद्या ग्रहण करने में परिश्रम करना चाहिये. इस्में बल सामर्थ्य कुछ कारण नहीं है. किन्तु केवल उद्योग ही समझा जाता है . ॥ २१ ॥

सहस्रगुणिता विद्या शतशः परिकीर्तिता ।
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नमिवोदकम् ॥ २२ ।

हजार वख्क्त अभ्यास और सौ वख्क्त शिष्योंको पढाई हुई विद्या जिन्हाग्र पर आति है याने दृढ होती है. जैसे कूप जल कई वख्क्त चक्कर घुमानेसे उपर आता है. ॥ २२ ॥

हयानामिव जात्यानामर्द्धरात्रार्द्धशायिनाम् ।
न हि विद्यार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति ॥ २३ ॥

विद्यार्थिको अर्धरात्रके समय शयन करना चाहिये. जैसे जात्य याने उत्तम जाती के अश्व अर्द्धरातको शयन करते है. उस्से उन्हीके तरह इन्को निद्रा दिनको त्रास न करेगी ॥ २३ ॥

न भोजनविलम्बी स्यान्न च नारीनिबन्धनः ।
सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद् गरुडहंसवत् ॥ २४॥

विद्यार्थिओंका लक्षण—विद्यार्थि जनोंने भोजन करने में विलम्बं न करना और अतिभोजन वर्ज करना. इसी तरह उस अवस्था में स्त्रीसंग त्याग करना. उस्से वह गरुड अथवा हंस के सदृश संपूर्ण विद्या को अल्पकाल में हासिल करलेगा ॥ २४ ॥

अहेरिव गणाद्भीतः सौहृद्यां नरकादिव ।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामाधिगच्छति ॥ २५ ॥

जनसमूहसे सर्पके सदृश डरने वाला और मित्र समूहको नरक सदृश मानने वाला तथा स्त्रिको राक्षसीके तुल्य जानने वाला जन विद्याका लाभ कर सक्ता है.

न शठाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न क्लीबा न च मानिनः ।
न च लोकरवाद्भीता न च श्वः श्वः प्रतीक्षकाः ॥ २६ ॥

शठ, क्लीब, मानी और पुन्हः पुन्हः गुरुपर अविश्वास करने वाले जन विद्याकी प्राप्ति कर नही सक्के. ॥ २६ ॥

यथा खनन् खनित्रेण भूतले वारि विन्दति ।
एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ २७ ॥

जैसे भूमि खोदनेसे जल निकलता है इसी तरह गु. विद्या गुरु सेवा करने वाला विद्यार्थि हासिल करता है. ॥ २७ ॥

शुश्रूषारहिताविद्या यद्यपि मेधागुणैः समुपयाति ।
वन्ध्येव यौवनवती न तस्य विद्या फलवती भवति॥ २८ ॥

यद्यपि कोई बुद्धिमान् जन गुरुके सेवा विगर आपने बुद्धी सामर्थ्यसे हि विद्याको ग्रहण करलेगा तो भि वह वंध्यायुवा स्त्री सदृश विद्याका साफल्य कर नहि सक्का. ॥ २८ ॥

द्यूतं पुस्तकवाद्यं च नाटकेषु च सक्तिका ।
स्त्रियस्तन्द्रा च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट् ॥ २९ ॥

द्युत, वाद्य, नाटक में आसक्ती, स्त्री, तन्द्रा और निद्रा ये छे विद्याके विघ्नकारक है. ॥ २९ ॥

यथा व्याघ्री हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् ।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोजयेत् ॥ ३० ॥

जैसे व्याघ्री या मार्जारी आपने बच्चेंको अधःपतनभीतीसे दृढ धारण करती हुई भी उन्को दांत से पीडित नही करती इसी तरह शद्बप्रयोग करनेवाले जनने दांतोंसे वर्ण को न दबाकर व्यक्त और मधुरतया शद्बोंका प्रयोग करना चाहिए. ॥ २० ॥

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ।
सम्यग् वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ २१ ॥

शास्त्रोक्तरीत्या शद्ब प्रयोग से ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है. ॥ २१ ॥

इति श्री नारदीय शिक्षाया भाषाविवृतिः समाप्ता.

॥ शुभम् भूयात् ॥

